अभिनव भारती ग्रन्थमाला—४

ब्रह्माण्ड और पृथ्वी

लेखक

श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी

[हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी]

सम्पादक

हजारीप्रसाद द्विवेदी

प्रकाशक—
गिरिजाशङ्कर वर्मा
अभिनव भारती ग्रन्थमाला
१७१-ए, हरिसन रोड,
कलकत्ता

प्रथम बार
जनवरी, १९४१
मूल्य १)

मुद्रक—
जेनरल प्रिण्टिङ्ग वर्क्स
८३, पुराना चीनाबाजार स्ट्रीट,
कलकत्ता।

सम्पादकीय वक्तव्य

भारतवर्षके प्राचीन ज्योतिषियोंने ब्रह्माण्डका विस्तार बतानेका प्रयत्न किया है। ब्रह्मगुप्त, श्रीपति, भास्कराचार्य, चतुर्वेदाचार्य प्रभृति ज्योतिषियों ने बताया है कि आकाशकी कक्षा १८७१२०६९२०००००००० योजनों की है। परन्तु प्राचीन भारतमें यह एक विवादास्पद ही विषय रहा है कि यह लंबी संख्या जिसे आकाश-कक्षा (या संक्षेपमें ख-कक्षा) कहते हैं वस्तुतः क्या चीज़ है। यह क्या वही वस्तु है जिसमें रातको फैले हुए असंख्य नक्षत्र और ग्रह विचरण करते दिखाई देते हैं, या कुछ और। विद्वानोंका मत था कि यह ब्रह्माण्डकी परिधि है। भास्कराचार्यने अपनी कविजनोचित भाषामें इनके मतको "ब्रह्माण्ड-कटाह-सम्पुट-तट" का मान बताया है। हिन्दू शास्त्रोंके अनुसार ब्रह्माण्ड दीर्घवर्तुलाकार पिण्ड है। 'ब्रह्माण्ड' शब्दमें ही इसके अण्डाकार होनेकी ओर इशारा किया गया है। यह मानो दो विराट् कड़ाहों को उलट कर जोड़ दिया गया है, जिसकी परिधिका सर्वाधिक विस्तार उस स्थानपर है जहां दोनों कड़ांह मिलते हैं। इसीलिये ब्रह्माण्डकी परिधि यह 'कटाह-सम्पुट-तट' ही हुआ। इस प्रकार इस श्रेणीके विद्वान् ऊपरकी लंबी संख्याको ब्रह्माण्डकी परिधि ही मानते थे। परन्तु पौराणिक विद्वान् और ही कुछ समझते थे। उनके मतसे यह उदयगिरि और अस्ताचलके बीचका अन्तर है। सूर्यको प्रति दिन इतनी दूरी तै करनी पड़ती है। भास्करा-

चार्य कहते हैं कि जिन विद्वानोंके लिये खगोल इतना सहज हो गया है जितना हथेलीपर रखा हुआ आंवलेका फल, वे इन दोनों बातोंको स्वीकार नहीं करते। वे कहते हैं कि सूर्यकी किरणें जहांतक पहुंच सकती हैं उस समूचे गोल-की परिधि इतनी बड़ी है अर्थात् यह उस आकाशकी सीमा है जिसे आदमी सूर्य किरणोंकी सहायतासे देखता है। इसी महाकाशमें हम ग्रहों और नक्षत्रोंको घूमते देखते हैं। यह विश्वकी सीमा नहीं है, और न यही कहा जा सकता है कि भारतवर्षीय ज्योतिषियोंके परिकल्पित नक्षत्र लोककी यह कक्षा है। क्योंकि पृथ्वीके ऊपर इन पंडितोंने जो सात वायुके स्तर कल्पित किये हैं उनमेंसे अनेक स्तर इसके ऊपर आ जाते हैं। ये सात स्तर इस प्रकार हैं—आवह, प्रवह, उद्वह, संवह सुवह, परिवह और परावह। इनमें आवह नामक स्तर वह है जो हमारी पृथ्वीके ऊपर बारह योजन तक लिपटा हुआ है। इसीमें मेघ और विद्युत् आदि हैं। इसके बाद बहुत दूरतक प्रवह वायुका क्षेत्र है जो नियमित रूपसे पश्चिमकी ओर बड़े वेगसे बहता रहता है और ६० घटी या २४ घंटेमें एक पूरा चक्कर लगा देता है। इसी वायुके झकोरेमें पड़कर पृथ्वीके ऊपरके सातों ग्रह (क्रमशः चन्द्रमा, बुध, शुक्र, सूर्य, मंगल, बृहस्पति और शनि) तथा समस्त नक्षत्रगण नियमितरूपसे २४ घण्टेमें पृथ्वी की एक परिक्रमा कर आते हैं। चूंकि नक्षत्रोंमें, इन पंडितोंके मतसे, गति नहीं है, इसलिये वे प्रवह वायुके झंकोरेसे ठीक समय पर अपने-अपने स्थानमें आ जाते हैं पर ग्रहोंमें गति है और वह भी प्रवह वायुकी उल्टी ओर, इस-लिये ग्रहगण २४ घण्टेमें ठीक उसी स्थानपर नहीं आ पाते जहांसे वे चले थे। यही कारण है कि हम ग्रहोंको सदा पूर्वकी ओर खिसकते देखते रहते हैं। ऊपरकी संख्या प्रवह वायुके अन्तर्गत पड़नेवाले क्षेत्रके बाहर नहीं हो सकती। अभी उसके ऊपर और भी पांच वायु स्तर हैं जिनके विषयमें हमें कुछ ज्ञात नहीं।

परन्तु भास्कराचार्य प्रभृति ज्योतिषी व्यवहारवादी थे। वे उस वस्तुके सम्बन्धमें कोई बहस नहीं करना चाहते थे जिसकी उनके गणितमें कोई

जरूरत ही न हो। इसीलिये उन्होंने ऐसी बहुत-सी बातों [illegible]र-छोड़ दिया है जिसका उनके मतमें कोई प्रयोजन नहीं है। इस ब्रह्माण्ड-परिधि सम्बन्धी विचारको उन्होंने बहुत महत्त्व नहीं दिया है। वे कहते हैं कि हमें यह ठीक नहीं मालूम कि ऊपरकी लिखित संख्या ब्रह्माण्डकी परिधि सम्बन्धी है या नहीं। किसीने ब्रह्माण्डकी सीमा कभी नापी नहीं। प्रमाणके अभावमें हम किसी मतको मानना नहीं चाहते। पर ब्रह्माण्ड इतना बड़ा हो या नहीं, असली बात यह है कि कल्प भरमें सभी ग्रह इतने ही योजन चला करते हैं। पूर्वाचार्योंने ग्रहका कल्प भरमें तै किये हुए योजनात्मक विस्तारको ही 'खकक्षा' नाम दिया है। यही व्यवहारके उपयुक्त बात है। यह स्मरण रखना चाहिये कि हिन्दू ज्योतिषियोंके मतसे सभी ग्रह दूरीमें बराबर ही चलते हैं। फिर भी कोई ग्रह तीव्र गतिसे चलता हुआ और कोई मंदगतिसे चलता हुआ इसलिये दिखाई देता है कि उनके घूमनेके जो मार्ग हैं वे बराबर नहीं हैं। छोटे वर्तुल मार्गमें चलनेवाला ग्रह बड़े वर्तुलवालेके बराबर ही चलता है पर पृथ्वीसे देखनेवालेकी दृष्टिमें वह बड़े वर्तुलवालेकी अपेक्षा बड़ा कोण बनता है और इसीलिये अधिक चलता दिखाई देता है। यह जो भास्कराचार्यका कथन है कि 'ब्रह्माण्ड इतना बड़ा हो या नहीं—"ब्रह्माण्डमेतन्मितमस्तु नो वा"—यही आधुनिक युगके पूर्ववर्ती समस्त जगत्के ज्योतिषियोंकी बात थी। यूरोपके ज्योतिषियोंमें भी ब्रह्माण्डके विषयमें इसी प्रकारकी उपेक्षा पाई जाती थी। यूरोपमें यद्यपि बहुत पुराने जमाने में एरिस्टार्कस नामक ज्योतिषीने (ई० पू० २५०) कहा था कि पृथ्वी स्थिर नहीं है, बल्कि अपनी धुरीपर घूम रही है और इस प्रकारका मत भारतीय आर्यभट आदि ज्योतिषियोंने भी प्रकट किया था पर वस्तुतः यह धारणा सदा बनी रही कि पृथ्वी ही ब्रह्माण्डके केन्द्रमें है। टालेमीने (१५० ई०) जो ग्रहोंका क्रम नियत कर दिया था, जो हू-बहू भारतीय ज्योतिषियोंके निर्धारित क्रमके समान ही है, वही उस दिनतक यूरोपमें मान्य समझा जाता था। सन् १५४३ ई० में जब कोपरनिकसने सिद्ध किया कि वस्तुतः पृथ्वी केन्द्रमें

नहीं है, सूर्य ही केन्द्रमें है और पृथ्वी अन्यान्य ग्रहोंकी भांति सूर्यकी परिक्रमा कर रही है तो विचारोंकी दुनियांमें एक जबर्दस्त क्रान्ति हुई। यह क्रान्ति केवल विचारोंमें हुई। वस्तुतः ज्योतिष सम्बन्धी तथ्य बहुत दिनोंतक बदले नहीं। पर विचारोंकी दुनियामें जो क्रान्ति हुई उसने प्राचीन विश्वासोंको बुरी तरह झकझोर दिया। मनुष्य अबतक अपनेको ब्रह्माण्डके केन्द्रमें रहनेवाला सर्वश्रेष्ठ प्राणी समझता था, अब नये शोधोंने सिद्ध कर दिया कि इस अनन्त ब्रह्माण्डमें उसकी पृथ्वी बालूके कणके बराबर भी नहीं है। विश्व बहुत बड़ा है, ब्रह्माण्ड असीम है, पृथ्वी और अन्यान्य ग्रहोंके संबंधमें जानना बहुत अधिक जानना नहीं है। अगर समस्त ग्रहोंका ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त भी हो जाय तो वह विराट् ब्रह्माण्डके अज्ञात रहस्योंकी तुलनामें कुछ भी नहीं है। इस प्रकार मनुष्यका ध्यान ग्रहोंपरसे हटकर नक्षत्रोंपर गया। रातको झिलमिलाते हुए ये असंख्य छोटे-छोटे प्रकाश बिंदु क्या है, ये कितने हैं, कितनी दूरीमें फैले हुए हैं—ये प्रश्न बार-बार मनुष्यके मानस-पटलपर आघात करने लगे।

दुरबीनके आविष्कारने इस विचारको और भी आगे ठेल दिया। खाली आंखोंसे जितने नक्षत्र दिखाई देते हैं उससे कई गुना अधिक दूरबीनकी सहायतासे दिखने लगे। जिनको पौराणिक पंडितोंने आकाश-गंगा कहा था, उसमें कोटि कोटि नक्षत्रपुंज दिखाई दिये। गणित शास्त्रकी उन्नतिके साथ ही साथ इनके परिमाण और विस्तारका रहस्य कुछ प्रकट होता गया। ज्योतिषीने पथराई आंखोंसे इस विश्वकी अनन्तताको देखा, उसका कौतूहल बढ़ता गया। प्राचीन ज्ञान उसे बिल्कुल नगण्य जंचा। इसी बीच फोटोग्राफीका आविष्कार हुआ। जो बात दूरबीनकी भी शक्तिके बाहर थी उसे फोटोग्राफीके प्लेटने पकड़ना शुरू किया। नक्षत्र गुच्छोंसे ठसाठस भरे हुए विश्वकी नाप-जोख ज्यों-ज्यों बढ़ती गई, मनुष्यकी जिज्ञासा भी बढ़ती गई। ज्योतिषका गणित शास्त्र, और पदार्थ विज्ञानसे बड़ा गहरा सम्बन्ध है। तीनोंकी उन्नति एक दूसरेको आगे ढकेलती गई। अन्तमें, पृथ्वीके निर्माणसे लेकर

विश्वकी परिणतितकमें एक सर्वमान्य नियमका खोज लेगाया जा सका। खुली आंखोंसे रात्रिकालीन आकाश जितना ही मनोरम दिखता था, बुद्धिकी आंखोंसे वह उतना ही रहस्य-मय दिखा।

न जाने किस अनादिकालके एक अज्ञात मुहूर्तमें सूर्यमण्डलसे टूटकर यह पृथ्वी नामक ग्रह पिण्ड सूर्यके चारों ओर चक्कर मारने लगा था। उसमें नाना प्रकारके ज्वलंत गैसोंका आकर था। इन्हींमें किसी एक या अनेकके भीतर जीवतत्वका अंकुर वर्तमान था। पृथ्वी लाखों वर्षतक ठंडी होती रही, लाखों वर्षतक उसपर तरल-तप्त धातुओंकी लहालेह वर्षा होती रही, लाखों वर्षतक उसके बाहर और भीतर प्रलयकाण्ड चलता रहा, और जीवतत्त्व स्थिर अविक्षुब्ध भावसे उचित अवसरकी प्रतीक्षामें बैठा रहा। अवसर आनेपर उसने समस्त जड़ शक्तिके विरुद्ध विद्रोह करके सिर उठाया—अंकुर-रूपमें। सारी जड़शक्ति अपने प्रबल आकर्षणका संपूर्ण वेग लगाकर भी उसे नीचे नहीं खींच सकी। सृष्टिके इतिहासमें यह एकदम अघटित घटना थी। अबतक महाकर्षके विराट् वेगको किसीने प्रतिहत नहीं किया था। जीव तत्त्व निर्भय अग्रसर होता गया। वह एक शरीरसे दूसरेमें—संततिके रूपमें संक्रमित होता हुआ बढ़ता ही गया। अनवरुद्ध अश्रान्त! मनुष्य उसीकी अन्तिम परिणति है—देशमें सीमित, कालमें असीम, शरीरसे नाशवान्, आत्मासे अविनश्वर। वही मनुष्य इस समस्त विश्व ब्रह्माण्डकी नाप जोख करने निकला है। विराट् ब्रह्माण्ड-निकायका दूरत्व और परिमाण, उनके कोटि-कोटि नक्षत्रोंका अग्निमय आवर्तनृत्य बहुत विस्मयकारी बातें हैं,सन्देह नहीं; परन्तु मनुष्यकी बुद्धि और भी विस्मयजनक है। उन समस्त ब्रह्माण्डों से अधिक प्रचण्ड शक्तिशाली, अधिक आश्चर्य-जनक। अत्यन्त नगण्य स्थानमें रहकर, नगण्यात् नगण्यतर कालमें रहकर वह इस विपुल ब्रह्माण्डको जाननेकी इच्छा रखता है और सफल होता जा रहा है। वह विश्वकी अजेय शक्ति है। ब्रह्माण्ड कितना बड़ा है, यह बड़ा सवाल नहीं है, मनुष्यकी बुद्धि कितनी बड़ी है, यही बड़ा सवाल है। हमारी आस्था उसपर हो गई है

तो कोई बात नहीं कि ब्रह्माण्ड इतना ही बड़ा है या नहीं—ब्रह्माण्डमेतन्मितमस्तु नो वा।

श्रीरामस्वरूप चतुर्वेदीजीने बड़े परिश्रमपूर्वक इस ब्रह्माण्ड और पृथ्वीके संबंधकी आधुनिक जानकारियोंका संग्रह किया है। अभिनव भारतीग्रन्थमाला के सहृदय पाठकोंके हाथमें इसे देते हुए सम्पादकको हर्ष और सन्तोष अनुभव हो रहा है। इसका अगला हिस्सा 'चैतन्यका विकास' भी चतुर्वेदीजीकी सरल लेखनी और परिश्रमका सुन्दर उदाहरण है। हमें यह सूचित करते हर्ष हो रहा है कि उक्त पुस्तक भी अभिनव भारती ग्रन्थमालामें शीघ्र ही प्रकाशित होने जा रही है।

—सम्पादक

कृतज्ञता-प्रकाश

यह छोटी-सी पुस्तक मैं ने ऐसे जिज्ञासु पाठकोंको लक्ष्य करके लिखी है जो इस अचरज भरे विश्वको जानने और समझनेके लिये मेरे ही समान छट-पटा रहे हैं। अत्यन्त छोटी अवस्थासे ही मेरे मनमें इस ग्रह-तारा-खचित आकाशकी वास्तविक स्थिति जाननेकी बड़ी व्याकुलता थी। कुछ विद्वानोंने मुझे जेम्स जीन्सका 'मिस्टीरियस यूनिवर्स' (अचरज भरा जगत्) पढ़नेकी सलाह दी थी। मैं अत्यन्त कृतज्ञता पूर्वक स्वीकार करता हूं कि इस पुस्तकने मेरी आंख खोल दी थी। गवर्नमेण्ट ट्रेनिंग कालेज आगराके प्रिंसिपल श्रीयुत चन्द्रमोहन चकने, जो इङ्गलैण्डसे हालहीमें लौटकर आये थे मेरी रुचि परखकर अपने घरेलू पुस्तकालयसे जेम्स जीन्सकी उपर्युक्त पुस्तक तथा कई पुस्तकें दीं। उक्त ट्रेनिंग कालेजके एक अन्य अध्यापक श्री एस० एम० नदवी महाशयने अन्य कई ग्रन्थोंके नाम बताकर मेरी क्षुधा और भी बढ़ा दी। इन पुस्तकोंने मेरी सारी शंकायें जड़से उखाड़ फेंकी। सब पढ़ चुकनेके पश्चात् गर्मियोंकी छुट्टीमें नैनीताल जानेपर हिन्दीमें कुछ लेख लिखे जिन्हें विज्ञान-परिषद्ने अपने मुख पत्र 'विज्ञान' में प्रकाशित भी कर दिये। श्रीयुत हजारी-प्रसादजी द्विवेदीको जब मैंने वे लेख दिखाये तो उन्होंने बहुत प्रोत्साहन दिया और मेरे सम्पूर्ण अध्ययनको पुस्तकका रूप दे देनेकी सलाह दी। उस

समय अभिनव भारती ग्रन्थमाला सम्भवतः गर्भावस्थामें थी। समय और साहित्य न मिल सकनेके कारण मैं शीघ्रतावश ब्रह्माण्ड-विस्तारका हिन्दूमत न दे पाया था किन्तु द्विवेदीजी ने उसे देकर इस कमीको भी पूरा कर दिया है।

इस विषयके अध्ययनमें ट्रेनिङ्ग कालेजके एक प्रोफेसर श्रीयुत एस० एल० जिन्डल साहबसे मुझे बहुत बड़ी सहायता मिली थी। ये यदि पूर्ण सहायता न देते तो सम्भव था विषय इतनी सफलतासे मैं न सुलझा सकता।

जिन जिन ग्रन्थोंसे मैंने सहायता ली है उनके लेखकों, श्रीयुत चन्द्रमोहन चक्र और श्री एस० एन० नदवी, प्रोफेसर जिण्डल, डाक्टर सत्यप्रकाश (विज्ञानके सम्पादक) तथा श्री हजारीप्रसादजी द्विवेदीका मैं हृदयसे कृतज्ञ हूं जिन्होंने मुझे भरपूर सहायता व प्रोत्साहन दिया।

काशी
१८-२-४१ } —रामस्वरूप चतुर्वेदी

विपय-सूची

चित्र-सूची

धरतीकी गर्भाग्नि

आग उगलता हुआ विषूवियस

ब्रह्माण्ड और पृथ्वी

१

ब्रह्माण्डका विस्तार
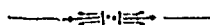
प्रायः देखा गया है कि साधारण दीख पड़नेवाली वस्तुओंके पीछे बड़ा रहस्य छिपा रहता है। एक समय था जब कि मनुष्यके पास दूरदर्शक आदि कोई भी यंत्र न थे। उन दिनों दृष्टिगत होनेवाले समस्त पदार्थोंमें पृथ्वी ही सबसे बड़ी समझी जाती थी। सूर्य और चन्द्रमा जिस आकारमें दिखाई पड़ते हैं उसी आकार के समझे जाते थे। उनके लिए यह सोचना स्वाभाविक ही था कि पृथ्वी अचल है, सूर्य और चन्द्रमा इसके चारों ओर घूमा करते हैं क्योंकि यह एक साधारण बात थी। वे इसे इन्द्रियोंसे नित्य अनुभव किया करते थे। आज भी सहस्रों ऐसे भोले व्यक्ति पड़े हैं जो नवीन ज्योतिष द्वारा वर्णित ब्रह्माण्ड-व्यवस्थाको.

कल्पना-मात्र समझते हैं। इसमें उनका दोष नहीं, क्योंकि उनके लिये यह सोच सकना बहुत कठिन है कि कोई वस्तु आधारहीन अवस्थामें आकाशमें कैसे लटकी रह सकती है। अतः पृथ्वीको सर्पोंपर या हाथियों पर टिका रहना मान लेना प्राचीनोंके लिये अस्वाभाविक न था। जब आदिम मनुष्यकी दृष्टि,रात्रिमें चमकनेवाले असंख्य तारागणों पर पड़ी होगी तब उसके मस्तिष्कमें क्या क्या कल्पनायें उठी होंगी, नहीं कहा जा सकता। कुछ नक्षत्र अधिक कान्तियुक्त थ, कुछ अल्प। प्रारम्भमें ग्रह व नक्षत्रोंमें भेद स्पष्ट न था। इन प्रकाश-पिण्डोंको क्या समझा जाता था यह इससे ही विदित हो जायगा कि सप्तर्षि, ध्रुव, गुरु, शनि आदि नाम देकर मर्त्यलोकके दिवंगत पुरुषोंकी आत्मा कहा जाता था। किसी महान् पुरुषकी आत्माको नक्षत्र-प्रकाशसे जोड़ देनेकी परम्परा अब भी है। तारा टूटते देखकर प्रायः भोली जनता समझा करती है कि किसी महात्माका दिव्यलोकगमन अथवा किसी दिव्यात्माका अवतरण हुआ है। ऐसी दशामें (जब कि टिमटिमानेवाले नक्षत्रोंको जीव समझा जाता था) नक्षत्रों या राशियोंका मेष, वृश्चिक, वृषभ आदि काल्पनिक स्वरूप देना भी अस्वाभाविक न था। आदिम ज्योतिषियोंके लिए तारागणोंका सूर्य और चन्द्रमासे सम्बन्ध निकालना टेढ़ी खीर थी। यंत्र न होने पर भी उन्होंने इन्हें ढूंढ़ निकाला इस लिए उन्हें असाधारण प्रतिभासम्पन्न मानना पड़ता है। विदित होता है कि सतर्क सतत निरीक्षण और अध्ययनके पश्चात् ही वे ऐसा कर सके थे। कई वर्षोंके निरीक्षण द्वारा वे जान सके कि नक्षत्र दिनमें डूब नहीं जाते अपितु सूर्य-प्रकाशरूपी धवल चादरमें छिप जाते हैं। गहरे कुएंके जलमें तारेकी परछाईं देखी होगी अथवा पूर्ण सूर्य-ग्रहणके समय नक्षत्रोंको देखकर वास्तविकताका पता पा लिया होगा। ध्रुव की स्थिति भी वही पाई होगी जो रात्रिमें देखा करते थे।

भारतवर्षका आकाश सब देशोंसे निर्मल व स्वच्छ रहा करता है। यहांके सप्तसिन्धु व सारस्वत प्रदेशके निवासियों ने ही संसार में सर्व प्रथम नक्षत्रों का अध्ययन प्रारम्भ किया था। भारतसे गान्धार, वाह्लीक, केकय, पारसीक प्रदेशों-का अटूट सम्बन्ध था ही वहां भी इसका प्रचार हो जाना असंगत न था। इतिहास वतलाया है कि ईसाके आठ शताब्दी पूर्व पारस व ग्रीसमें युद्ध, आक्र-मण, छीना-झपटी, कन्याहरण आदि व्यापार हुआ करते थे। पारससे ज्योतिष विद्या ही क्या और भी विद्यायें यथा दर्शन,न्याय, वेदान्त इत्यादि यूनान, मिश्र और शालदिया पहुंचा करती थीं।

अनेक्ज़ीमेण्डर (५४० ई० पू०) का मत था कि पृथ्वी निराधार अन्त-रिक्षमें अचल लटकी हुई है, जिसके चारों ओर स्वर्गीय आत्मायें परिभ्रमण किया करती हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि यूनानवालोंने प्रारम्भिक ज्योतिष शालदिया निवासियोंसे सीखा था। मिश्रके पिरामिडोंकी वनावटमें भी शालदियन कलाका हाथ माना जाता है।

प्रारम्भिक निरीक्षकों की दृष्टिमें ग्रहों और तारागणोंके वीच भेद स्पष्ट न था। इम्पीडोक्लीस (Empedocles ४४४ ई० पू०) ने सर्व प्रथम ग्रहोंको निश्चल प्रतीत होनेवाले तारागणोंसे भिन्न सिद्ध किया। पाइथागोरस तथा उसके साथियोंने ग्रहोंका क्रम निर्धारित किया। प्लेटो तथा अरस्तूके समका-लीन (लगभग ३४० ई० पू०) ज्यतिषी यूडोक्सस (Eudoxus) ने ग्रहोंकी गतियाँ निश्चित कीं।

मध्यकालीन युगमें सोलहवीं शताब्दीके अन्त तक समस्त भूमण्डलके व्यक्तियोंमें किसीको भी पृथ्वीसे चन्द्रमा सूर्यकी दूरी, उनके आकारोंका अनु-पात आदि कुछ विदित न था। केवल इतना ही विदित था कि सूर्य चन्द्रमासे वड़ा किन्तु पृथ्वीसे छोटा तथा वहुत दूर है। कितनी दूर है यह पता न था

और न पता लगानेके साधन ही उपलब्ध थे। सोलहवीं शताब्दीके अन्ततक लोगोंकी यह धारणा थी कि पृथ्वी समस्त ब्रह्माण्डके मध्यमें स्थित है। जितने ग्रह, नक्षत्रादि दृष्टिगत होते हैं केवल पृथ्वी व पृथ्वीनिवासियोंके लिए रचे गये हैं। इनके सृजनका और कोई उद्देश्य नहीं।

तात्पर्य यह कि पृथ्वीके सामने सूर्य, चन्द्र नक्षत्रादि किसीकी सत्ता प्रधान न मानी जाती थी। सोलहवीं शताब्दीके अन्तमें गेलीलियो ने टेलिस्कोपकी रचना की।

सत्रहवीं शताब्दीके प्रारम्भमें कोपरनीकस, केपलर आदि आविष्कारक अपने अपने समुन्नत टेलिस्कोपों (दूरदर्शक यंत्रों) के सहित मैदान में उतरे। इन्होंने प्रमाणित किया कि पृथ्वी अपने पड़ोसी ग्रहोंसे स्थिति, आकार इत्यादि किसी बातमें श्रेष्ठ नहीं है बल्कि बराबर या छोटी है। इस दलने आवेशके झोंक में आकर यह भी कहना प्रारम्भ कर दिया कि केवल पृथ्वी में ही जीव-सृष्टि नहीं पाई जाती अपितु समस्त दृष्टिगोचर होनेवाले ग्रहों व नक्षत्रोंमें भी जीवसृष्टि पाई जाती है। इधर अभी तक किसीका ध्यान न गया था। इस धारणा ने भी उतना ही ज़ोर पकड़ा जितना इससे पहलेवाली धारणा शताब्दियों तक ज़ोर पकड़े आई थी। इस धारणा के पीछे धार्मिक भावना का पुट अधिक था, वैज्ञानिक भावना का कम। उनका कहना था कि चन्द्रमा, बुध आदिमें प्राण होना सम्भव है। * न्यूटनका कथन था कि सूर्य लोकमें जीवन होना सम्भव है। सरजान हारशल, एरागो, डा० आइज़क टेलर आदि भी इसी सिद्धान्तके माननेवाले हुए।

सन् १८५३ तक इसी सिद्धान्तका प्रतिपादन होता आया। इसी वर्ष ह्वीवेल नामक वैज्ञानिक ने प्रमाणित किया कि सब ग्रहोंमें जीवनका पाया जाना

* Man's place in the univers (A. R. Wallace) Page 8.

असम्भव है। सम्भवतः मङ्गलग्रहमें पायाँ जाता हो, क्योंकि उसमें बनस्पति-के कुछ चिह्न प्रतीत होते हैं। तात्पर्य यह कि सन् १८६० तक प्रगतिशील ज्योतिषियोंका ध्यान सौर ग्रहमें जीवनके अस्तित्वपर वाद-विवादमें ही लगा था। दूरदर्शक यन्त्रको उत्पन्न हुए प्रायः दो शताब्दियाँ हो चुकी थीं पर अभी तक ग्रहोंकी चाल तथा दूरी नापनेके झंझटमें ही लगा रहा, आगे न बढ़ सका।

दूरदर्शक यन्त्र अधिक शक्तिवाला बना और वैज्ञानिकोंका ध्यान ग्रहों और उपग्रहोंकी सतह-निरीक्षण पर गया। यह अध्ययन करनेका प्रयत्न हो चला कि वे किस धातुके बने हैं तथा कबके बने हुए हैं? बस यहींसे ज्योतिष का वास्तविक विकास प्रारम्भ हुआ। सारे ज्योतिर्विदोंके मस्तिष्क में क्रान्ति सी मच गई। सबका ध्यान इसी ओर लग गया। इस विचारधाराका जन्म देने-वाला था जर्मन वैज्ञानिक किर्चहॉफ (१८६०) का आविष्कार। इसने सूर्य-सतहपर दिखाई पड़नेवाली काली रेखाओं का कारण बताया। ज्योतिष इति-हासमें प्रथम वार रहस्योद्घाटन हुआ कि सूर्यमें हाइड्रोजन, सोडियम, लोहा तथा चुम्बक, केलशियम, ज़िंक आदि पाये जाते हैं।

सूर्यतलमें उपलब्ध तत्वों का अध्ययन चल ही रहा था कि कुछ व्यक्तियों ने तारागणोंकी वास्तविक प्रकृति अध्ययन करनी प्रारम्भ कर दी। रोमन ज्योतिषी फादर सेचीने १८६७ तक अनुसन्धान करके संसारको बताना प्रारम्भ कर दिया कि दूर टिमटिमानेवाले तारागण सूर्य हैं—विशालकाय हैं—क्रमिक विकासकी शृङ्खलामें विभिन्न अवस्थाओंमें हैं। कोई शिशु है तो कोई किशोर, कोई युवक है तो कोई वृद्ध। सबका रङ्ग व तापमान इन बातोंका साक्षी है। किन्तु ताप-प्रक्षेपक सतह सबके हैं। विभिन्न तत्वोंसे युक्त वायुमण्डल सबके हैं, विभिन्न घनत्व सबके हैं।

दूसरी महत्वपूर्ण घटना जो इन्हीं दिनों हुई वह थी *प्रकाशकी गति द्वारा दूरी नापना। यह विद्या आजतक चली आ रही है। इसकी सहायतासे ही ब्रह्माण्डकी लम्बाई, चौड़ाई, गहराई, ऊँचाई आदि नापी जा सकीं।

अभी तक मनुष्यका ध्यान दूरदर्शककी सहायतासे केवल नक्षत्र-निरीक्षण-की ओर था पर अब उनके फोटो लेनेकी प्रवृत्ति बढ़ी। सन् १८८८ के २९ दिसम्बरको डा० आइज़क रावर्ट्सने चार घण्टेमें एक चित्र लिया जिसमें लग-भग एक सहस्र छोटे-बड़े नक्षत्र अपने अपने आकारानुसार अङ्कित हो गये।

तबसे आजतक दूरदर्शक और फोटोग्राफी दोनों शाखायें उत्तरोत्तर वृद्धि करती आईं। जैसे ही जैसे अधिक शक्तिवाला दूरदर्शक यंत्र बनता गया सुदूर टिमटिमानेवाला नक्षत्र, नीहारिका और गैलेक्सीका पता लगाया गया। साथ ही साथ चित्रपटकी सहायतासे उनकी संख्याका पता चलता गया। माउण्ट विल्सनके १०० इञ्चवाले दूरदर्शकसे २०००,००० नीहारिकाओंका (सन् १९३८ तक) पता लगा है। इनमेंसे प्रत्येक नीहारिका इतनी बड़ी है कि उससे कई अरब सूर्य बनाए जा सकते हैं—जब कि सूर्य पृथ्वीसे तेरह लाख गुना बड़ा है। सुदूरतम नक्षत्रकी दूरी १५०,०००,००० प्रकाशवर्ष लगायी जाती है। यह है मनुष्यका आजका ज्योतिष-ज्ञान।

यहाँ तक तो मनुष्य का ज्योतिर्ज्ञान प्राप्त करनेके लिए युगोंकी पगडण्डीमें लड़खड़ाकर बढ़ना अङ्कित किया गया। सूक्ष्म रूपसे यह चित्रित करनेकी चेष्टा की गई कि मनुष्यका ध्यान पहले पृथ्वीपर, फिर सूर्य-चन्द्रपर, फिर नव ग्रहोंपर, फिर नक्षत्रोंपर, फिर नीहारिकाओंपर और आज फिर सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके आकार-प्रकार, रूप, रङ्ग, आयु, विस्तार आदिपर कैसे पहुँचा अब अगली पंक्तियोंमें विचार करेंगे कि वर्तमान कालमें "ब्रह्माण्ड" शब्द कह देनेसे

* प्रकाशकी गति एक सेकेण्डमें १८६००० मील है।

उन्चातिउच्च समुन्नत प्रौढ़ मस्तिष्कमें जिस चित्रकी रूपरेखा खिंच जाती है वह क्या है ? मनुष्यका ज्योतिर्ज्ञान कितना है ?, अब तकके सहस्रों वर्षोंसे संगृहीत ज्ञानकोषको अल्प मंजूषामें समाविष्ट किया जा सकता है ? यदि हाँ तो उसकी कुञ्जी प्रत्येक पाठकके हाथमें दे देना अनुचित न होगा। हम "मानव-विकास" का अध्ययन करने जा रहे हैं ; उसे समझनेके पहले यह जान लेना अत्यावश्यक है कि "भू-विकास" किस प्रकार हुआ। "भू-विकास" तभी समझमें आ सकता है जब कि "भूजन्म" के पूर्व कालीन होनेवाले घटनाचक्रों, " भूजन्म " करानेवाले कारणों आदिपर एक दृष्टि डाल ली जाय।

इस आश्चर्यजनक विश्वमें जितने ही गहरे पैठा जाय उतने ही कौतूहल-वर्द्धक रहस्य खुलते जाते हैं। आसपास की वस्तुओंको जितने ही आँख खोल-कर देखते चलें उतने ही अधिक भेद स्पष्ट होते जाते हैं। किन्तु सब वस्तुएं नेत्रोंसे (केवल नेत्रोंसे) नहीं देखी जा सकती। ईथर-कम्प तथा उससे भी सूक्ष्म पदार्थ तो अनुभूति की वस्तुएं रह जाती हैं यन्त्रोंको भी दिखलाई देना प्रारम्भ होता है तो प्रोटन्ससे (जिसका व्यास १०००,०००,०००,०००,०००,०' इञ्च है और तौल औंसका ५०००,०००,०००,०००,० वां भाग है)। इस अत्यन्त आश्चर्यपूर्ण वृहत ब्रह्माण्डकी महानसे महान वस्तु (जिसका व्यास ३००,००० प्रकाशवर्ष और मात्रा २००,०००,०००,००० सूर्योंके तुल्य है) भी दूरदर्शक यन्त्रसे दिखाई देती है। ये दोनों छोटी से छोटी और बड़ीसे बड़ी वस्तुएं बिना यन्त्रकी सहायताके नहीं देखी जा सकतीं। नङ्गी आँखोंको इन दोनों सीमाओंके मध्यवर्त्ती पदार्थ ही दिखाई पड़ते हैं—यथा बन्द कमरेमें प्रवेशकर आनेवाली सूर्य किरणमें नाचनेवाले परमाणु, रजकण, कीट, पतङ्ग, विहङ्ग, तृण, लता, वृक्ष, पशु, मानव, टूटता हुआ तारा, उपग्रह, ग्रह, सूर्य,

नक्षत्र, नक्षत्रगुच्छ और आकाशगङ्गा। इन दिखाई पड़नेवाले पदार्थोंमें प्रारम्भिक व अन्तिम कई ऐसे हैं जिनको हम केवल देख भर लेते हैं बस इससे अधिक कुछ नहीं करते। इतना जानते हैं कि वे हैं पर यह नहीं जानते कि जैसा हम देखते हैं वैसे ही हैं या उससे भिन्न हैं। उनका वास्तविक स्वरूप क्या है? कब से हैं? कितने हैं? सब स्वतन्त्र हैं या परस्पर सम्बन्धित? हम ऐसी ही और भी बहुतसी बातोंके जाननेका कष्ट नहीं करते। यदि कोई चाहे कि इन रहस्योंको बिना किसीसे पूछे—अपनी निजी चेष्टाओंसे समझ लिया जाय तो असम्भव है। सम्पूर्ण जीवन भर लगे रहनेपर भी वास्तविकताकी झलक नहीं मिल सकती। हमें मानव द्वारा पूर्व सञ्चित ज्ञानराशि की सहायता लेनी ही होगी। यह जानना ही होगा कि मनुष्य अबतक कितना चल चुका है। तब उस राशिमें हम भी अपना चन्दा दे सकते हैं उससे पूर्व नहीं। हमें सीढ़ी द्वारा चढ़कर उच्चातिउच्च खण्डमें पहुँचना है अतः अच्छा हो कि निम्नातिनिम्न सीढ़ीपर पैर रखकर चढ़ा जाय।

हमारे सबसे निकटका ग्रह पृथ्वी है। हम नित्य इस पर चलते फिरते रहते हैं। अतः सोचा करते हैं कि सम्पूर्ण पृथ्वी मिट्टी पत्थरकी ही बनी है। जिस स्थान पर बैठे हैं उसे यदि लगातार खोदते ही चले जायें तो क्या अमेरिका तक मिट्टी व पानी के अतिरिक्त और कुछ न मिलेगा? नहीं और भी कई पदार्थ मिलेंगे। नारियलके फलको खोलें तो विदित होता है कि पहला खोल जटाओंका, दूसरा आवरण खोपड़ाका और तीसरी बारमें गरीका गोला मिल जाता है ठीक इसी प्रकार पृथ्वीमें भी पहला आवरण मिट्टी व समुद्रका, दूसरा तेलिया पत्थरका और तीसरा लोहेका पिण्ड। जिस मिट्टीको हम देखा करते हैं उसकी गहराई ३० मीलसे अधिक नहीं है। ऐसा समझना भूल होगी कि पृथ्वीके अन्दर मिट्टी ही मिट्टी है।

जैसे जैसे भीतर प्रवेश करते जायें घनत्व वढ़ता जाता है। यहां तक कि पृथ्वीके मध्य भाग लोहा और स्टील तक पहुँचते-पहुँचते ५.५ हो जाता है। यह वड़ा कड़ा पदार्थ है। इसी लौहपिण्डमें चुम्बककी शक्ति निहित है जो कि आकाशीय वस्तुओंको पृथ्वीकी ओर खींचा करती है। पृथ्वीकी क्रमिक रचनाका दिग्दर्शन द्वितीय अध्यायमें किया जायगा। यहाँ इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि यह भी ग्रह समितिका एक सदस्य है। सव सदस्योंका कार्य-क्रम एक ही है—सूर्य की प्रदक्षिणा करना। सवके भगणकाल भिन्न हैं अतः परिक्रमा करनेमें समय भी भिन्न भिन्न लगता है। यदि हम सव ग्रहोंको यथाक्रम एक पंक्तिमें सजाकर रखें तो सूर्यके वाद ये ग्रह इस प्रकार रखे जायेंगे बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, अवान्तर ग्रह या स्फुटपिण्ड, वृहस्पति, शनि, यूरे-नस, नेपच्यून और प्लूटो। इनकी सूर्यसे दूरी ४, ७, १०, १६, २८, ५२, १००, १९६, ३८८ के अनुपातसे है।

इसे कई प्रकारसे समझानेकी चेष्टा की गई है। यदि अपनी पृथ्वीको एक ऐसी गेंद माने जिसका व्यास १ इञ्च हो तो सूर्य इतना वड़ा चक्र होगा जिसका व्यास अर्थात् धुरा ९ फ़ीट तथा पृथ्वीसे दूरी ३१३ गज़ होगी। इसी मापसे चन्द्रमाकी दूरी २½ फीट, मंगलकी १७५ फ़ीट, वृहस्पतिकी १ मील, शनि की २ मील, यूरेनेसकी ४ मील, नैपच्यूनकी ६ मील और प्लूटोकी लगभग १२ मील होगी।

नवग्रहोंके आकारको ध्यानपूर्वक देखनेसे विदित होता है कि बुधसे जैसे जैसे आगे वढ़ते जाते हैं आकार वढ़ता जाता है यहां तक कि ठीक मध्यमें पहुं-चने पर वृहस्पतिका आकार सवसे वड़ा है। वैज्ञानिकोंका मत है कि वहुत समय पहले हमारे सूर्यके पाससे होकर एक वड़ा सूर्य निकला था। उसने हमारे सूर्यमें ज्वार भाटा उत्पन्न करके सिगारनुमा भाग खींचा, इसी खिंचे

हुए भागसे प्लूटो, नैपच्यून, शनि आदि बने। इसका सविस्तार वर्णन अगले अध्यायमें करेंगे। आगे चलकर सूर्यने ग्रहोंसे उपग्रह उत्पन्न किए।

वह ग्रह जिसका अस्तित्व हाल ही में विदित हुआ है—प्लूटो है। इसे सन् १९३० ई० की जनवरीको टॉमबाऊ ने सर्वप्रथम देखा था यद्यपि सन् १९१४ में अमेरिकन ज्योतिषी लावैल्ने इसके अस्तित्वकी कल्पना कर ली थी। हमारी पृथ्वीको सूर्य-परिक्रमामें एक वर्ष लगता है, प्लूटोको २४९·१७ वर्ष। अभी अनुसन्धान हो रहा है। ठीक ठीक विदित नहीं हो पाया है कि यह ग्रह किस धातुका है। यह आकारमें तो पृथ्वीसे कई गुना बड़ा है, पर आकारानुसार भास्वर नहीं होता। सब ग्रह तो सूर्यसे उत्पन्न हुए माने जाते हैं पर इसकी उत्पत्ति संदिग्ध है। कुछ लोग कहते हैं कि यह अन्य मण्डलका सदस्य है धोखेसे सौरमण्डलमें पदार्पण कर आया तबसे सूर्यने बन्दी बना लिया। प्लूटो से भी आगे किसी ग्रहका अस्तित्व विदित नहीं है। सम्भव है, भविष्यमें पता चले।

नवग्रहोंकी विशेषताओंकी सारणी दी जाती है :—

ग्रह नाम	तापक्रम	दिनमान	वर्ष परिमाण	सूर्यसे दूरी	विशेषतायें
प्लूटो	२४०° सेन्टीमीटर		२४९ वर्ष		अभी हाल ही में सन्, ३१ में पता लगा है।
नपच्यून	२००° से०		१६'५ वर्ष	२,७९,२०,००००० मी.	
यूरेनस	१८०° से०	१०¾ घंटे	८३ वर्ष	१,७८,२०,००००० मी.	शीतल गैसका पिण्ड शनिसे भी अधिक ठंडी सतह वाला।
शनि	१५०° से०	१० घं० १४ मि०	२९½ वर्ष	८८,६०,००,००० मी.	आकर्षण शक्ति पृथ्वीसे मिलती जुलती। विचित्र धातुओंसे निर्मित। उसके चारों ओर हिमराशि, कारबनके ठंढे मेघ छाये रहते हैं।
		२४ से०			
बृहस्पति	१४०° से०	९ घंटा ५३ मिनट	१२ वर्ष	४८,३०,००,००० मी.	सब ग्रहोंमें स्थूल, पर द्रुतगामी। ठोस कारबन डाई आक्साइडके मेघ। अन्य गैसें तरल व प्रस्तरीभूत दशा में सम्पूर्ण ग्रह लौह धातु-निर्मित। सतह हिमाच्छादित। भूमि ऊंची नीची, महा शीत गैसका वायुमंडल।

ग्रहनाम	तापक्रम	दिनमान	वर्ष परिमाण	सूर्यसे दूरी	विशेषतायें
मङ्गल	७०° से लेकर १०° तक	२४ घंटा ३७ मि०	६८६ दिन	१४,२०,००,००० मी.	आकारमें पृथ्वीसे छोटा, अतः गुरुत्व शक्ति कम । सतह चिकनी मिट्टी की। वायुमण्डल पृथ्वी सा। आक्सीजन व जलवायु का होना । नहरों तथा वनस्पतियोंका देख पड़ना । उष्णताका रुके न रहना । प्रत्येक रात्रिको पाला प्राणिअस्तित्व संदिग्ध।
शुक्र	२५° से०	२० दिनसे अधिक	२२४ दिन	६,७०,००,००० मी.	अपनी धुरी पर घूमना, विवादास्पद वायुमण्डलका होना निश्चित । सूर्य की ओर सदा एक रुख ।
बुध	३५०° से०	८८ दिन	८८ दिन	३,६०,००००० मी.	अपनी धुरी पर घूमना बन्द । वायुमण्डलका अभाव । अत्यल्प होनेसे कोई गैस रोक नहीं सकता ।
सूर्य	६०००° से० सतह ४०,०००,०००° मध्य केन्द्र में	+ जन्मसे आज तक दिन ही है	+ आवश्यकता नहीं	०	
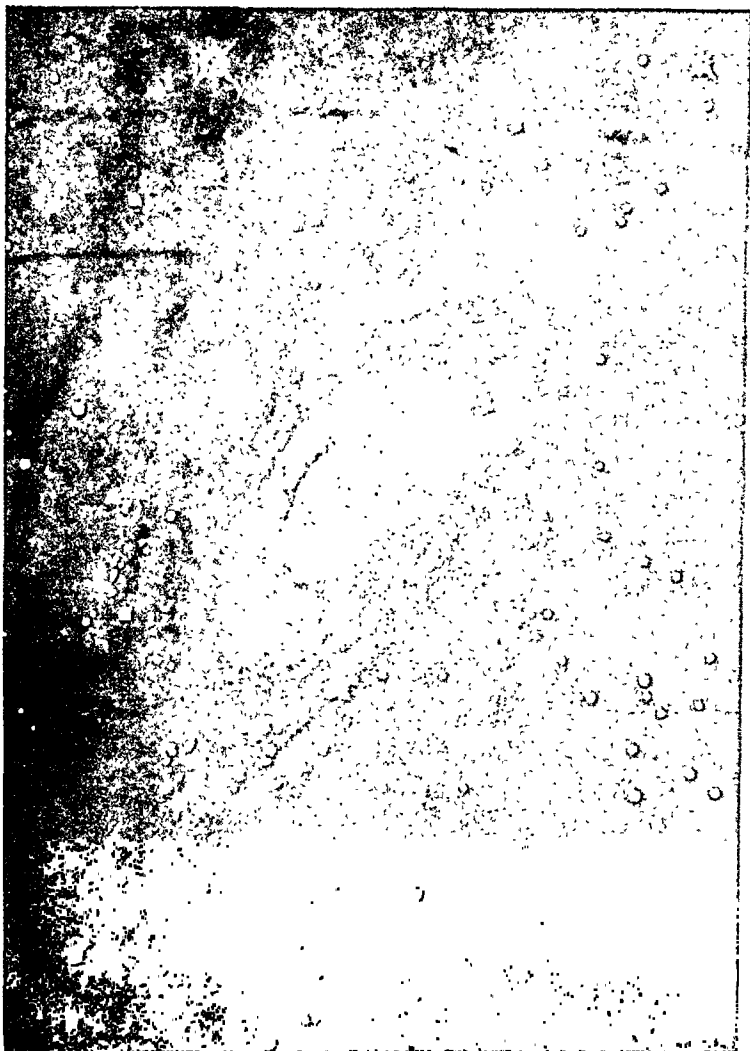
नीहारिकाएं

इसमें पहला कोष्ठ तापक्रमका है। यदि ऊपरसे लेकर सब ग्रहोंका तापक्रम एक एक करके देखें तो विदित होता है कि ज्यों ज्यों सूर्यके निकट पहुँचते जाते हैं उष्णता बढ़ती जाती है। बहुधा साधारण जनताकी धारणा रहती है कि दिखलाई पड़नेवाले ग्रहोंमेंसे शनि, वृहस्पति, वुध, शुक्र आदि अग्निपिण्ड हैं तभी चमकते देख पड़ते हैं। किन्तु यह धारणा भ्रममूलक है। सूर्यसे अत्यन्त दूर वाले पांच ग्रहों—प्लूटो, नैपच्यून, यूरेनस, शनि और वृहस्पति मेंसे प्रत्येक ग्रह इतना ठंढा है कि बर्फ जमी रहती है। उनके वायुमण्डलमें शीतल कारवनडाइऑक्साइडके बादल छाये रहते हैं। शेष चार ग्रहों—मङ्गल, पृथ्वी, शुक्र, वुधमें मङ्गल सबसे ठंढा हैं किन्तु इतना ठंढा नहीं हैं कि वनस्पति को भी न पनपने दे—पृथ्वी शीतोष्ण कटिबन्धमें है। शुक्र कुछ कुछ उष्ण, वुध अधिक उष्ण। फिर सूर्यका तो पूछना ही क्या है। वुधको छोड़कर सबमें किसी न किसी भाँतिका वायुमण्डल पाया जाता है। पूछा जा सकता है कि प्लटोसे वुध तकके ग्रह जलते नहीं हैं फिर भी वे क्यों चमकते प्रतीत होते हैं। चन्द्रमा भी तो नहीं जलता फिर भी प्रकाशित रहता है। यदि एक पिण्ड सूर्य-तापका प्रतिविम्ब फेंक सकता है तो क्या दूसरे पिण्ड इसी नियमसे प्रेरित होकर समान आचरण नहीं कर सकते? अन्य ग्रह भी सूर्य-प्रकाशका प्रतिविम्ब फेंक सकते हैं। तब तो हमारी पृथ्वी भी इन ग्रहोंको कान्तियुक्त प्रतीत होती होगी? अवश्य!

वह कान्ति कैसी है? एच० एच० रसेलका कहना है कि चन्द्रमासे देखने पर पृथ्वी पुर्णेन्दुसे चालीस गुना अधिक कान्तियुक्त दिखेगी। शुक्रसे देखनेपर, यहांसे दिखलाई पड़ने वाले शुक्र-प्रकाशसे ६ गुनी प्रभायुक्त दिखेगी। वहांसे चन्द्रमा इतना चमकीला दिखेगा जितना कि वृहस्पति हमें दिखता है—चन्द्रमा पृथ्वीके अत्यन्त निकट देख पड़ेगा। वहांके आकाशमें चन्द्रमा व पृथ्वी युग्म

पिण्ड प्रतीत होंगे। हमारे आकाशमें दो चन्द्रमा साथ साथ निकलने पर जो दृश्य उपस्थित करेंगे वही वहाँ होगा। और भी आश्चर्यकी बात यह है कि शुक्रसे देखने पर पृथ्वीकी कान्ति नीलमणि सदृश और चन्द्रमाकी पीताम्बर सदृश दिखाई देगी। जांच द्वारा देखा गया है कि भूमिकी अपेक्षा बादल तिगुना प्रकाश-प्रतिबिम्ब फेंकते हैं। अतः पृथ्वीका आधा भाग श्वेतवर्ण प्रतीत होगा। समुद्र पर पड़कर लौटनेवाली सूर्य किरणोंका प्रक्षेपण अत्यन्त तेजयुक्त होगा। पर्वत व सतह नीली तथा हिमाच्छादित, ध्रुवप्रदेश तीव्रश्वेत। जंगल और घासके मैदान हलके रंग वाले प्रतीत होंगे।

शुक्रग्रहसे पृथ्वीकी केवल वही वस्तुएँ दिखाई दे सकेंगी जिनका व्यास ५० मीलसे अधिक होगा।

चन्द्रमा पर बैठ कर सर्वश्रेष्ठ विस्फोटकी सहायतासे यदि देखा जाय तो सब वस्तुएँ स्पष्ट दिखेंगी क्योंकि चन्द्रमा अति निकट है। कारोबारी शहरसे दिनमें धुवां निकलता हुआ और रात्रिमें प्रकाश निकलता हुआ दिखाई देगा किन्तु यह पहचानना कठिन होगा कि ये ज्वालामुखी हैं या कुछ और। समय समय पर अमेरिकाके लम्बे घासके मैदानोंका कट जाना भी स्पष्ट दीख सकता है। पनामा नहरके लिए बनाई गई बड़ी झील, समुद्रतट, पर्वत-श्रृंखला, हिमरेखा आदि भी सरलतासे दीख जायंगी इसी प्रकार अन्य ग्रहोंसे भी पृथ्वी कुछ न कुछ दिखाई देगी।

यद्यपि आधुनिक यंत्र-विज्ञानकी सहायतासे हम बहुत कुछ जानने लगे हैं फिर भी अभी तक इतना शक्तिशाली दूरदर्शक यन्त्र नहीं बना जो ग्रहोंमें जीवित प्राणियोंको देख सके। इतना निश्चित है कि सब ग्रह किसी न किसी प्रकारकी धातुके बने है—आगके जलते गोले नहीं हैं। यह भी कहा जा चुका है कि सबका जन्म सूर्यसे हुआ। जिस समय इनका जन्म न हुआ था

अर्थात् जब यह सब अपने पिताके शरीरमें ही व्याप्त थे उस समय सूर्यका आकार कितना विशाल रहा होगा कल्पनातीत है।

अब सूर्यकी बात ली जाय। यह कहना अत्युक्ति न होगा कि हमारा सूर्य भी एक नक्षत्र है। रात्रिके समय निर्मल आकाशकी ओर देखनेपर अगणित तारागण टिमटिमाते दृष्टिगत होते हैं। यह हमसे इतनी दूर हैं कि अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता। सूर्य-प्रकाशको हम तक पहुँचनेमें ८ मिनट लगते हैं जब कि प्रकाशकी गति १८६००० मील प्रति सेकण्ड है। निकटतम नक्षत्र फेक्सिमोसेन्टारी हमसे इतनी दूर है कि वहांसे प्रकाश आनेमें ४½ वर्ष लग जाते हैं। इससे भी आगे बढ़नेपर गगनमण्डलमें अनेकों नक्षत्र ऐसे मिलते हैं जो सहस्रों प्रकाशवर्षकी दूरी पर हैं। और भी आगे बढ़नेपर हम ऐसे नक्षत्रों तक पहुँचते हैं जिनसे प्रकाश आनेमें एक एक लाख वर्ष लग जाते हैं। हमारा स्थानीय नक्षत्रमण्डल यहीं तक है। हमारा सूर्य जिस नक्षत्र-समितिका सदस्य है उसकी सीमा १ लाख प्रकाशवर्ष है। इन नक्षत्रों मेंसे प्रत्येक नक्षत्र इतना बड़ा है कि उससे सहस्रों सूर्य बनाए जा सकते हैं। इनकी कान्ति भी अपने सूर्यसे कई गुना अधिक है किसी किसीकी कांति दस सहस्र गुनी तक है।

इन नक्षत्रोंकी संख्याका इतिहास बड़ा विचित्र है। टालेमी ने सन् १३७ में इनको संख्या १,०२५ आंकी थी। जे० जी० क्राउथर का कहना है कि नक्षत्रोंकी प्रथम गणनाका श्रेय हिन्दू ज्योतिषियोंको है। डी० मॉरगन का कहना है कि हिन्दू गणनाका ठीक काल नक्षत्रोंकी स्थिति देखते हुए विदित होता है कि ईसासे ४००० वर्ष पूर्व रहा होगा। दूसरी बार समरक़न्दके प्रसिद्ध विद्वान उलफ़बेगने सन् १४५० में की। तदनन्तर टाइकोब्राहेने सन् १५८० में १००५ नक्षत्रोंकी स्थिति अंकित की। जिसके आधारपर कैपलरने अपना सिद्धान्त निर्धारित किया।

इस समय तक नग्न नेत्रोंके अतिरिक्त कोई भद्दा यन्त्र भी न था जिससे स्वर्गीय दीपपुञ्ज गिने और चित्रित किये जाते। यही कारण था कि टाल्मी और टाइकोने लगभग १००० से अधिक अङ्कित न कर पाए।

पहला टेलिस्कोप २६ इञ्चका था। इसकी सहायतासे आर्जीलैण्डरने ३००,००० तारोंको आंका था। माउण्ट विल्सनकी प्रयोगशालामें १०० इञ्चके टेलिस्कोप द्वारा कुल १,०००,०००,०००,००० फोटोग्राफीके योग्य तारोंकी गणना की गई है। अब सन १९३८-३९ में २०० इञ्चका टेलिस्कोप तैयार हुआ है देखें अब कितने नक्षत्रोंका पता चलता है।

केपटीन तथा उसके साथियोंका अध्ययन बतलाता है कि हमारे सूर्यके आसपास पुरा पड़ोसमें ४७,०००,०००,००० नक्षत्र हैं। इन नक्षत्रोंकी गति विधि प्रवृत्ति आदिमें अद्भुत समानता है। इन सब नक्षत्रोंसे मिलकर स्थानीय "विश्व द्वीप" बना है। ज्योतिषियों एवं वैज्ञानिकोंका मत है कि जिस प्रकार बुध, शुक्र आदि ग्रह एक समय सूर्यमें समाये हुए थे उसी प्रकार यह सब नक्षत्र भी किसी समय एक राशिमें समाये हुए थे—अलग अलग न थे—आपसमें जुड़े हुए थे। जिस प्रकार नवग्रह सूर्यकी परिक्रमा करते हैं, उसी प्रकार यह सब नक्षत्र क्षिप्रगतिसे किसी एक महान नक्षत्र (सम्भवतः ध्रुव) को केन्द्रमें रखकर परिक्रमा करते हैं। गाड़ीके पहियेमें परिधिके समीपवाली पंखुड़ियां अधिक वेगसे और केन्द्रकी पंखुड़ियां कम वेगसे घूमती हैं। ठीक इसी प्रकार जो नक्षत्र इस हमारे स्थानीय विश्वचक्रके सिरे पर हैं अधिक वेग से दौड़ते हैं और जो मध्यके निकट हैं वे कम वेगसे यहां तक कि ठीक मध्यवाला नक्षत्र (ध्रुव) घूमता ही नहीं।

इस हमारे स्थानीय विश्व द्वीपके चारों ओर लिपट कर आकाशगंगा कटिमेखला का काम देती है। जिस विश्वद्वीपमें हम हैं उसका व्यास
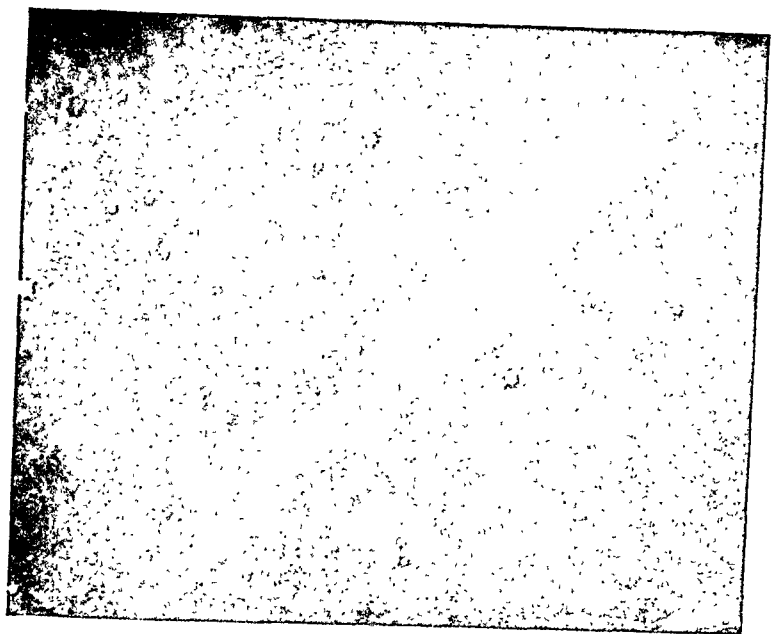
दीर्घाकृति नीहारिका
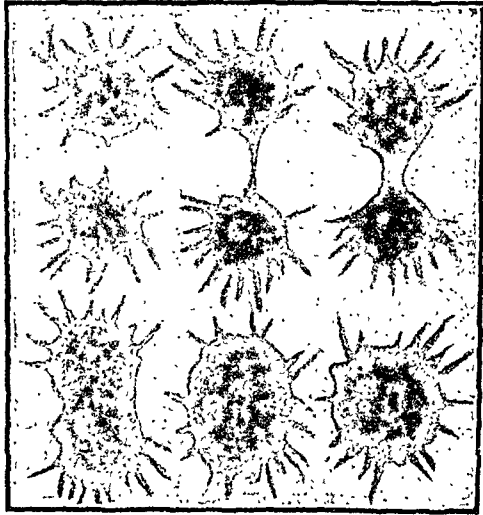
अमीबा

३००,००० प्रकाशवर्ष [१] तथा मोटाई ६०००० प्रकाशवर्ष है। स्थानीय विश्वद्वीपमें केवल नक्षत्र ही नक्षत्र नहीं है अपितु नक्षत्रपुञ्ज, छोटी मोटी नीहारिकाएँ, प्रकाश मेघ, आदि भी सम्मिलित हैं। नक्षत्र पुञ्जसे तात्पर्य उस प्रकाश चादरसे है जिसमें सहस्रों नक्षत्र टँके हों। यह दो प्रकारके हैं एक गोल कन्दुकाकार दूसरे विस्तृत जलदाकार। प्रसिद्ध वैज्ञानिक शैपलेने पता लगाया है कि प्रखरतम पुञ्जमें ५०,००० तारोंसे कम नहीं हैं। यह तारे धुँधले दीख पड़ते हैं जिससे विदित होता है कि वहुत दूर हैं। सैन्टारी नामक नक्षत्रपुञ्जकी दूरी प्रायः २१,००० प्रकाशवर्ष और हरक्यूलीजकी २३,००० प्रकाशवर्ष आँकी गई है।

एक नक्षत्रपुञ्जका प्रकाश-सम प्रायः हमारे सूर्यप्रकाशसे ३००,००० गुना होगा तथा उसकी मात्रा १००,००० सूर्यके तुल्य।

नीहारिकाएँ भी दो प्रकारकी हैं—गोल और चपटी। गोल नीहारिकाओंकी संख्या लगभग १५० है। इनके मध्यमें एक वड़ासा नक्षत्र है। इन नीहारिकाओंमें से प्रत्येकका व्यास प्रायः ७००,०००,०००,००० मील है जब कि हमारी पृथ्वीका ८००० मील है।

इस प्रकार ऊपर कहे हुए नक्षत्र, नक्षत्रपुञ्ज और नीहारिकायें आदि मिलाकर हमारे स्थानीय विश्वदीपकी सीमा पूरी होती है।

क्या हमारे स्थानीय विश्वद्वीपके अतिरिक्त और भी विश्वद्वीप हैं?

१—पहले ही बताया जा चुका है कि प्रकाश एक सेकण्डमें १८६००० मील चलता है। इस हिसाबसे वह १ वर्षमें जितनी दूरी तै कर लेता है उसीको एक प्रकाशवर्ष कहते हैं। ज्योतिषी लोग आकाशकी दूरी इसी पैमानेसे नापते हैं।

हैं, और बहुत हैं। वे इतने दूर हैं कि १०० इञ्चवाले टेलिस्कोपमें भी विन्दुमात्र या अधिकसे अधिक कन्दुक मात्र प्रतीत होते हैं। कोई कोई तो इतने छोटे दिखाई पड़ते हैं जितने छोटे कि नग्न नेत्रोंको दूर टिमटिमानेवाला तारा। हमारे स्थानीय विश्वद्वीपका पड़ोसी विश्वद्वीप अण्ड्रांमीडा कहलाता है। इसमें अरबों नक्षत्रोंका प्रकाश होता रहता है। फिर भी दूरदर्शक यन्त्रको उतनासा ही प्रतीत होता है जितना कि निर्धन नेत्रको एक छोटा तारा प्रकाशके विद्यार्थियोंने गणित तथा गहन निरीक्षण द्वारा देखा है कि उसकी दूरी १०००,००० प्रकाशवर्ष है। वास्तविक मानव-प्रादुर्भावके समय चला हुआ प्रकाश आज तक यहां नहीं पहुँचा है।

इस अन्ड्रांमीडा के अतिरिक्त लाखों अन्य विश्वद्वीप टेलिस्कोपमें टिम-टिमाते नजर आते हैं किन्तु शेष सब अस्पष्ट और धुँधले हैं। साधारण अनुपात द्वारा आंकनेसे विदित हुआ है कि धुँधलेसे धुँधला विश्वद्वीप जो सम्भवतः अब तक देखे गये विश्वद्वीपोंमें सबसे दूर हैं—१४०,०००,००० प्रकाशवर्ष है। अर्थात् अन्ड्रामीडासे १४० गुना दूर। पाठकोंको आश्चर्य होता होगा कि इतनी इतनी लम्बी दूरियां कैसे आंकी जाती हैं। सम्भवतः कुछ पाठक इन बातोंको कोरी कल्पना और गप्प कह दें तो भी आश्चर्य नहीं। यहां जितनी बातें हो रही हैं कोई स्वरचित या स्वगढ़ित बात नहीं है—जो बात विश्वविज्ञान द्वारा प्रमाणित हो चुकी है उसीका परिचय कराया जा रहा है। दूरी नापनेका और फिर विश्वदीपोंका, नियम सर्वप्रथम श्रीमती हैनरेटालीविट ने निर्धारित किया था। उन्होंने विचित्र प्रकारके नक्षत्रोंको देखा था। ये नक्षत्र एक नियत समय (कोई-कोई १५ घण्टे और कोई कोई पांच छः दिन) तक ज़ोरोंसे धधकते रहते, शान्त हो जाते, फिर उतने ही दिनों तक धधकते रहते और फिर उतने ही समय

तक शान्त रहते। इन्हें Cepheids (सीफ़ेड्ज़्) कहा जाता है। इन नक्षत्रोंके चमकनेकी अवधि तथा उनकी दूरीमें स्थिर सम्बन्ध है। जो जितनी अधिक दूर होगा उतनी ही कम देर तक धधकता दीखेगा। टैलेस्कोप द्वारा देखनेसे पता चलता है कि इन विश्वदीपोंमें भी सीफ़ेड जातिके प्रकाशपुञ्ज हैं—उनके धधकनेकी मात्रा व अवधि देखकर हिसाव लगा लिया है कि वे कितनी दूर व कितने प्रकाशवान् हैं। इसी प्रकाशके गणित द्वारा अण्ड्रामीडाकी दूरी १,०००,००० प्रकाशवर्ष निकाल ली गई है।

इतने दूर चमकने वाले विश्वद्वीपोंका चित्र मिनट दो मिनटमें नहीं लिया जाता—जैसा कि पृथ्वीकी वस्तुओंका लिया करते हैं कि इधर वटन दवाया उधर फ़ौजी सलामके ठाठसे नमस्ते किया, हँसमुख आकृति लानेके लिये मुद्रा वना ही रहे थे कि फिल्ममें जा छपे। एक सेकेण्ड में ही हँसी और वेहँसी के वीच का फोटो आ गया। इतनी शीघ्रता ज्योतिर्जगत्में नहीं होती वहाँ तो सुदूरतम नीहारिका के प्रकाश-विहग को पकड़ने के लिये फिल्म-पींजड़े का द्वार कई घंटों खोले रखना पड़ता है। ज्योतिषी मनाया करते हैं कि कव रात्रि आवे और कव वे पींजड़े का मुख खोलें। चित्रपट को लगातार खुला रखते हैं, उनका क्या विगड़ता है। अमावस्या में नक्षत्रों, निहारिकाओं, विश्व-द्वीपों के अतिरिक्त किसका प्रतिविम्व चित्रपट पर पड़ेगा। जिधर देखा नक्षत्र-गुच्छ नहीं है, शून्य है उधर ही तेज़से तेज़ दूरवीन व कैमरेका मुंह घुमा दिया। घंटों खुला रहने दिया। हर वार चार या छः छः घंटे बाद कैमरे का फिल्म पलटते रहते हैं—क्योंकि माना कि सुदूरतम विश्वद्वीप महीनों एक ही स्थान पर स्थिर प्रतीत होता रहता है फिर भी—पृथ्वी जिस पर कैमरा रक्खा है त्वरित गति से दौड़ रही है इससे कुछ तो हिलाजुली होगी ही कुछ तो चित्र विकृत होगा। अतः कई वार भिन्न प्लेटों पर चित्र लेना होता है।

अस्सी घण्टे तक चित्रपट को खुले रख कर अध्ययन करने से प्रकाश का विवरण विदित होता है। पर आशा है कि जैसे ही अधिक शक्तिशाली नेत्र व पट बनते जायेंगे यह सीमा घटती जायगी।

जिस प्रकार का स्थानीय विश्वद्वीप तथा उसका पड़ोसी अण्डामीडा ऊपर कहा गया है उसी प्रकार के २,०००,००० छोटे बड़े विश्वद्वीपों से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड बना है।

यह विशाल ब्रह्माण्ड कितना लम्बा, चौड़ा, ऊंचा और गहरा है जिसमें बीस लाख विश्वदीप अपने पुत्र, पौत्रों, प्रपौत्रों, प्रप्रपौत्रों आदिको लेकर विभिन्न दिशाओंकी ओर गमन किया करते हैं। विश्वदीपोंका अध्ययन करते समय वैज्ञानिकोंने एक बड़ी रोचक बात देखी। उन्होंने देखा कि सब विश्वदीप हमारे स्थानीय विश्वदीपसे अप्रसन्न होकर दूर भागते जा रहे हैं। इनके भागनेकी गति अत्यन्त तीव्र है। कोई-कोई २०० मील प्रति सेकण्ड तथा कोई-कोई १२००० से १५००० मील प्रति सेकण्डके हिसाबसे दूर भागता जा रहा है। पाठक कहेंगे कि हमें कभी ऐसा देखनेका अवसर नहीं मिला—कभी ऐसा न हुआ कि देखते-देखते नक्षत्र ऊपर उठता गया हो यहां तक कि लोप हो गया हो। बात यह है कि नग्न नेत्रोंको जो भी तारे दिखाई देते हैं वे स्थानीय विश्व दीपके सदस्य हैं। ये सब परस्पर गुरुत्वाकर्षण शक्तिके कारण आकृष्ट व आबद्ध हैं। साथ-साथ एक दिशाकी ओर दौड़ सकते हैं। साथ छोड़ कर दूर ऊपर नहीं भाग सकते। प्लेटोंमें कुछ ऐसे चित्र आते हैं जो नीहारिका-रूप दीख पड़ते हैं किन्तु वास्तवमें हैं विश्वद्वीप। यहाँ जिनका वर्णन किया जा रहा है वे स्थानीय विश्वद्वीपके नक्षत्र नहीं है अपितु हमसे भिन्न विश्वद्वीप हैं।

स्वयं हमारा स्थानीय विश्व-द्वीप किसी दिशाकी ओर २०० मील प्रति सेकेण्डके हिसाबसे भाग रहा है। सबका औसत निकाल कर देखा जाय तो
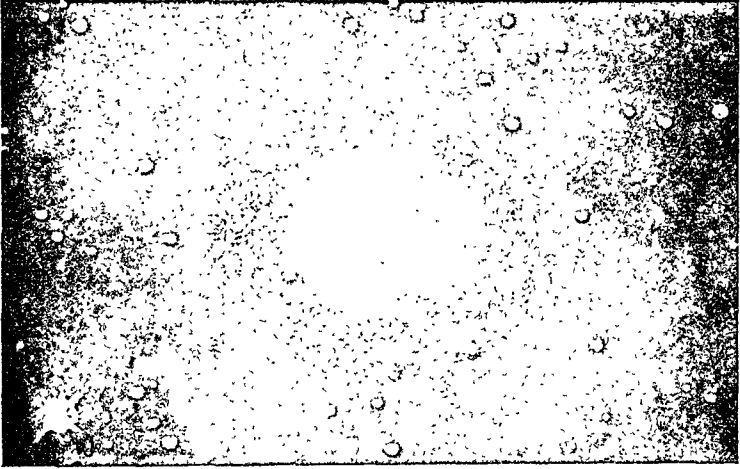
वलयाकृति नीहारिका

पता चलेगा कि प्रत्येक विश्व-द्वीपसे १,५००,००० मील प्रति घण्टा दूर भागता जा रहा है। क्यों?

आकर्षण-सिद्धान्तके अनुसार निकटवर्ती वस्तुओंमें आकर्षण अधिक होता है, किन्तु ज्यों ज्यों दूरी बढ़ती जाती है आकर्षण घटता जाता है विकर्षण बढ़ता जाता है। लाखों अरबों मीलकी दूरी पर आकर्षण सर्वथा लुप्त हो जाता है। केवल विकर्षण अर्थात् तनाव ही उन दो वस्तुओंके बीच रह जाता है। तभी तो आकाशगङ्गासे बाहरके नक्षत्र-पुञ्जोंमें ही दूर भागनेकी क्रिया दृष्टि-गोचर होती है। सूर्यकी आकर्षणशक्ति सौरमण्डल, अधिक-से-अधिक प्लूटो तक प्रभावशील है उसके पश्चात् प्रभावहीन हो जाती। पिछले वर्णनमें हमने देखा कि हमारे सूर्य जैसे तथा इससे भी सहस्रगुना बड़े सूर्य लाखों हैं—नक्षत्र-पुञ्ज है, प्रकाश सरितायें हैं, नीहारिकायें हैं। ये सब मिलाकर स्थानीय विश्व-द्वीप बनाते हैं। तात्पर्य यह कि यह सब भिन्न आकर और स्वभाववाले आलोक-सरोवर एक ही दिशामें घूमते रहकर एक महान शक्ति द्वारा सञ्चालित होनेका परिचय देते हैं। वह शक्ति—स्थानीय विश्व-द्वीपकी गुरुत्वाकर्षण शक्ति हमारे सूर्य और पृथ्वीकी गुरुत्वाकर्षण शक्तिसे असंख्यगुना बड़ी है तब तो इस सूर्य जैसे सहस्रों पिण्डोंको नियन्त्रित रख पाती है। किन्तु इस शक्तिकी पहुँच एक निश्चित दूरी तक है। उसके आगे दूसरे विश्व-द्वीपकी राज्य सीमा प्रारम्भ हो जाती है। यह भी अपने दायरेके भीतरवाले प्रकाशमेघोंको मध्यशक्ति द्वारा आकर्षित किये रहता है किन्तु उसका हमारे विश्व-द्वीपपर प्रभाव नहीं पड़ता। दो विश्वद्वीपोंके बीच तनाव या विकर्षण है। इसी प्रकार न जाने कितने विश्व-द्वीप हैं यह सब कहां कहांतक फैले हैं, कबसे फैलना आरम्भ हुआ आदि मनोरञ्जक प्रश्न हैं जिनका उत्तर देनेके लिये, विज्ञानने १९२९ से लड़खड़ाते हुए संदिग्ध पैरोंसे आगे बढ़ना प्रारम्भ किया है।

जिस प्रकारके स्थानीय विश्वद्वीप तथा पड़ोसी अण्ड्रामीडा का ऊपर वर्णन किया जा चुका है उसी प्रकारके २०,००,००० (बीस लाख) विश्वद्वीप अनन्त शून्यमें लड़खड़ाते हुए और १००० मील प्रति सेकण्डकी गतिसे भागते हुए देखे गये हैं। पृथ्वीपरसे देखनेवालोंको यह विश्वद्वीप केवल नीहारिकावत् प्रतीत होते हैं। आकाशके जिस भागकी ओर टेलेस्कोपका मुँह घुमाकर देखें एक न एक इसी प्रकारकी विश्वदीप-नीहारिका दिखाई देगी। इससे विदित होता है कि ये सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें विकीर्ण हैं, कोई स्थान बचा नहीं। इस स्थानकी सीमा कहां तक है, नहीं कहा जा सकता। डाक्टर 'हिल' का अनुमान है कि दूरातिदूर चमकनेवाले विश्वद्वीपके दस गुना आगेसे अधिक (अर्थात् १४०,०००,०००×१० डेढ़ अरब प्रकाश मीलसे आगे) स्थानका अभाव है। स्थान नहीं है तब क्या है; इसका उत्तर ठीक-ठीक नहीं निकल सका। अनुमान है कि केवल शून्य, शून्य और महाशून्य होगा। कितनी दूर तक, कुछ पता नहीं।

पृथ्वी गोल है—पूर्वकी ओर नाककी सीधमें चले जाइये कहीं न मुड़िये अन्तमें आप अपनी जगह आ जायंगे। ठीक यही सिद्धान्त विशाल ब्रह्माण्डके लिये लागू होता है। ब्रह्माण्ड गोल है—ससीम है—सान्त है।

सवाल यह है कि यदि ब्रह्माण्डका विस्तार सीमित है तो आकृति किस प्रकारकी है ?

आकृतिकी रेखा अङ्कित करनेके लिये वैज्ञानिकोंने कई रूपकोंसे काम लिया है। आर्थर एडिंगटन कहते हैं कि पानीमें उठनेवाले बुलबुलेकी भांति अण्डाकार है, लेमेटेअर फर्माते हैं कि आतिशबाजीके गोलेकी भांति है, जोन्स साहबका मत हैं कि रबर बैलूनकी शकलका है। बहरहाल सबका सिद्धान्त एक ही प्रकारकी आकृतिसे है। भारतीय ऋषियोंने भी दिव्य चक्षु द्वारा इसकी

रूपरेखाका नामकरण ब्रह्म+अण्डसे किया था ताकि केवल नामसे ही स्वरूप अंकन हो जाय ।

ब्रह्माण्ड के स्वरूप की कल्पना इस प्रकार की जा सकती है— समस्त भूमण्डल पर एक दूसरे से सटाकर मनुष्य खड़े कर दिये जायँ। पृथ्वीके भीतर ठीक केन्द्र से लेकर परिधि तक कंकड़, पत्थर, मिट्टी, पानी, खनिज आदि न होकर मनुष्य ही मनुष्य खड़े होते तो जो आकृति बनती वह ब्रह्माण्डकी होती। पृथ्वी की परिधि-सतह पर खड़े होने वाले व्यक्ति सुदूर टिमटिमाने वाले विश्वद्वीप हैं, सब गोल घेरे में हैं। केन्द्र से व परिधि के बीच खड़े होने वाले व्यक्ति अगणित तारागण, नीहारिका, विश्वद्वीप आदि हैं। हमारे सौरमण्डल की स्थिति केन्द्र के निकट है या परिधिके, कुछ कहा नहीं जा सकता ।

यदि ब्रह्माण्ड सान्त और ससीम है तो घनफल, पदार्थमात्रा, और व्यास आदि भी विदित होना चाहिये ।

हबिल के कथनानुसार इसका व्यास १,४००,०००,००० (क़रीब डेढ़ अरब) प्रकाशवर्ष है । उन्होंने लम्बाई-चौड़ाई, गहराई आदिकी गणना करने के पश्चात् देखा तो उसके घनफलको ३८४,०००,०००,०००,०००,०००, ०००,०००,०००,०००, ०००, ०००,०००,०००,०००, ०००, ०००००, ००० वर्गमील (अर्थात् ३८४ × $१०^{५७}$ वर्गमील) पाया ।

अखिल ब्रह्माण्ड में पाये जाने वाले सब प्रकाशपिण्डों को मिला दिया जाय तो हमारे जैसे १०,०००,०००,०००,००० ०००,०००,०००,००० सूर्यों के तुल्य हो । कितना विराट् है यह ब्रह्माण्ड !!

२

स्थान, काल और पदार्थ

प्रथम अध्याय में वर्णित इस ब्रह्माण्ड में तीन के अतिरिक्त चौथी वस्तु नहीं है। वे तीन वस्तुयें हैं—स्थान, काल और पदार्थ। जो कुछ घटना होती है वह इन्हीं तीनों के मेल से होती है। हम किसी तारा को टूटता हुआ देखते हैं तो किसी समय में, किसी विशेष स्थान या दिशा में देखते हैं साथ ही साथ जिसे देखते हैं वह कुछ न कुछ पदार्थ होता है। आइये इन तीनों —समय, स्थान, पदार्थ को एक एक करके देखें।

समय क्या है? सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो पता चलेगा कि समय कही जाने वाली कोई वस्तु ही नहीं है। यह भ्रम है जिसे समय कहा करते हैं। समय की माप दिन व रात्रि से किया करते हैं। जितनी देर सूर्यप्रकाश मिलता रहता है उतनी देर को दिन और जितनी देर सूर्य प्रकाश का अभाव रहता है उतने को रात्रि कहा करते हैं; किन्तु उन नक्षत्रों की तो कल्पना कीजिये जहां प्रकाश का कभी अभाव ही नहीं होता। वहां किसे दिन किसे रात

कहेंगे—वहां तो जबसे जन्म हुआ तबसे इस क्षण तक प्रकाश ही प्रकाश रहता आया है। सूयको ही ले लीजिये—वहां आज तक रात्रि नहीं हुई, समय का लम्बा असीम सागर सा लहरा रहा है। विश्व-द्वीप जहां अन्धकार का नाम नहीं, जहां प्रकाश-सरितायें लहराया करती हैं वहां का दिन कितना बड़ा होता होगा यह केवल कल्पना की बात होगी। आज तक एक सी ही दशा रही है—प्रकाश, प्रकाश, प्रकाश। यह भी पता नहीं कि अब तक आधा दिन हुआ है या चौथाई। तात्पर्य यह कि दिवसके अतिरिक्त अन्य वस्तुका नाम तक नहीं। जब एक ही दिन का अन्त नहीं हुआ तब सप्ताह, मास, वर्ष, युग, मन्वन्तर आदिके अस्तित्वकी कल्पना कौन कर सकता है। इसी प्रकार दूसरे पहलूसे भी देखिये कि जब एक दिनकी ही अवधि निश्चित नहीं हो पाई है तब उसे पहर, घड़ी, पल अथवा घंटा, मिनट, सेकंड में कैसे विभाजित कर सकते हैं—विभाजित किया किसे जाय—जब कुछ हो तब तो!

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा के आते ही हम प्रसन्न होकर कहने लगते हैं, "आज नवीन वर्ष प्रारम्भ हो रहा है।" अन्य दिनों की अपेक्षा चैत्र शुक्ल प्रतिपदा के दिन में उदय होते समय अस्त होते समय क्या विशेषता है? कुछ नहीं। फिर कैसे कहा जा सकता है कि अमुक दिन नवीन दिन है, प्रथम दिन है। इसी प्रकार की धारणायें वर्ष, मास, सप्ताह, व चौबीस घण्टे का दिन-रात मानने के पीछे छिपी हैं। क्या पता कि वर्ष का पहिया बारह मास में ही पूरा घूमता है, एक ही प्रकार से सूर्य निकला डूबा करता है। वर्षचक्र को, भी घूमते जाने दीजिये। सात दिनों का ही सप्ताह प्रकृति में होता है। प्रत्येक रविवार के पश्चात् सोमवार फिर आता है—क्या देख कर कह दिया। आज बुध है क्योंकि कल मंगल था और कल ब्रहस्पत होगा आदि बातों की गहराई तक जाया जाय तो पता लगेगा जिसे समय मान बैठे हैं वह वास्तवमें

कुछ है नहीं, अपनी सुविधाके लिये सांसारिक काम सुचारु रूपसे चलानेके लिये एक पूर्णिमासे दूसरा पूर्णिमा तक होने वाले दिनोंकी संख्या जोड़ लेते हैं और कह देते हैं कि दो पखवारेका एक मास—किन्तु यदि दुर्भाग्यसे चन्द्रमा न होता अथवा यदि होता तो सूर्यपिण्ड की तरह नित्य पूरा निकला करता तो कितने दिनोंका मास होता सोचना व्यर्थ है। जिस प्रकार काम चलाने के लिये मासकी गणना करते हैं उसी प्रकार वर्षकी भी पतझड़ हुआ वसंत आया, भीषण अग्निकी ज्वालायें तपीं, मूसलाधार वृष्टि हुई, कड़ाके के जाड़े पड़े फिर पत्ते झड़ने लगे एक चक्कर पूरा हो गया। हमने समझ लिया एक वर्ष (चक्र) हो गया। यह वर्ष ऋतुओंके परिवर्तनके कारण माना था। यदि ऋतु-परिवर्तन होवे ही नहीं—सदैव अग्निज्वालायें धधकती रहें तो वर्ष की सीमा क्या होगी—स्पष्ट है। इन बातों से विदित होता है कि समय की कल्पना प्रकाशके होने और न होनेके फल स्वरूप मान ली गई है। इसका अस्तित्व पृथ्वी अथवा अन्य ग्रहों तक ही सीमित है वास्तवमें कुछ है नहीं। इसका विस्तृतकारण सहित वर्णन इस पुस्तकके दूसरे भागमें किया जायगा।

दूसरी समस्या स्थानकी है। स्थानका प्रश्न समयके प्रश्नसे भी गूढ़ है। स्थान है क्या? मैं आगरेमें हूं, कमरेमें बैठा लिख रहा हूं। क्या इसे स्थान कहा जा सकता है? मैं तो पृथ्वी पर बैठा हूं—स्थान पर नहीं, फिर स्थान क्या है? पदार्थ मात्र!

पृथ्वीका नक़शा देखते देखते सब स्थानोंको हम जान गये हैं। किसी ने पूछा, "लंका कहाँ है"? झट उत्तरी गोलार्द्धमें भारतवर्षके दक्षिण दिशा की ओर स्थित टापूका ध्यान हो आया। किन्तु यदि किसीने पूछा "पृथ्वी कहां है, अथवा सौरमण्डल कहाँ है"? तब अन्तरिक्ष का ध्यान हो आता है—पर स्थान किधर गया? संभव है दिशाओं से स्थान का तात्पर्य निकलता हो।

सब कोई जानता है दिशायें मुख्य छः हैं—पूरव, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर, नीचे। स्मरण रहे पूरव, पश्चिम आदिको सूर्य निकलनेके आधार पर ही मानते हैं। क्या वस्तवमें पूरव, पश्चिम, ऊपर, नीचे कही जाने वाली कुछ हैं? सुदूर अन्तरिक्षमें—सौरमण्डलसे परे बहुत दूर आकाशमें अपने को पहुंचा कर सोचें तो पता चलेगा कि वहाँ तो चारो ओर सूर्य ही सूर्य चमक रहे हैं। किस सूर्य के आधार पर पूरव मानें किसके आधार पर पश्चिम। ऊपर नीचे की समस्या भी टेढ़ी खीर होगी—वहां तो जिधर सिर होगया वही ऊपर, जिधर पैर होगये वही नीचे—जिधर चल दिये वह आगे जिधर पीठ रही वह पीछे। दिशा कही जाने वाली वस्तु ही नहीं दीखती। इसका भी माना जाना पृथ्वी तक ही सीमित है। अतः पता चला कि दिशा स्थान नहीं है। वास्तव में स्थान के लिये भी वही कहना पड़ेगा जो कि समयके लिये कहना पड़ा था कि स्थान कही जाने वाली कोई वस्तु नहीं। जिसे स्थान कहते हैं वह और कुछ नहीं पदार्थका पर्यायवाची शब्द है। समय व स्थान कुछ वस्तु नहीं। आइये पदार्थ को देखें।

जहां तक दृष्टि जाती है पदार्थ ही पदार्थ दिखता है। यह पदार्थ या तो जीवित पदार्थ है या मृत। वैज्ञानिकोंने प्रमाणित कर दिया है कि जीवित पदार्थ (मनुष्य, पशु, पक्षी, कृमि, जलचर, वृक्ष आदि) का विकास जीवन-रहित पदार्थसे हुआ। किस प्रकार हुआ यह अगले अध्यायोंमें देखेंगे। यहां इतना समझ लेना पर्याप्त होगा कि—हुआ। जीवन रहित पदार्थके तीन रूप-हैं—ठोस, तरल, गैस। जितने भी पदार्थ हमें दिखलाई देते हैं या तो ठोस हैं या तरल या गैस रूप। जो पदार्थ ठोस दीख रहे हैं (जैसे मट्टी, पत्थर बर्फ आदि) वे इस दशामें आनेके पूर्व तरल रह चुके हैं और उस तरलावस्थाके पूर्व गैस रूप में रह चुके हैं—प्रश्न उठता है कि गैसके पहले किस रूपमें थे?

पदार्थवेत्ताओं ने एकमत होकर निर्णय निकाला है कि ब्रह्माण्ड धीरे धीरे क्षीण होता जा रहा है। हमें जितने भी नक्षत्र दिखलाई पड़ते हैं वे सब के सब धधक रहे हैं, इस जलने में—प्रकाश फेंकने में उनकी शक्ति व तोल कम होता जा रहा है। अनुसन्धान द्वारा विदित हुआ है कि हमारे सूर्य का वज़न प्रति मिनट पीछे ३००,०००,००० टन कम होरहा है। पूरे पिण्ड की चौगिर्द सतह से एक मिनट तक प्रकाश फेंकने में उपर्युक्त मात्रा निकल जाती है। कहां जाती है, क्या होता है? इन प्रश्नोंके उत्तरमें कहा जाता है कि यह वज़न ताप और प्रकाशमें फिर प्रकाशसे शक्ति (energy) में परिवर्तित हो जाता है। यह हुआ हमारे सूर्य का हाल जिसकी गणना अगणित पुञ्जों के समक्ष कुछ भी नहीं है। ब्रह्माण्डके समस्त महासूर्य तथा प्रकाश-सरोवर इसी विधि से अन्तरिक्ष-गर्भ में अपरिमित शक्ति उँडेला करते हैं। हमारी पृथ्वी के वायुमण्डल में भी इसी प्रकार की शक्तिरश्मियां आलोड़ित हुआ करती हैं। सम्पूर्ण हिरण्यगर्भ उनका क्रीड़ाक्षेत्र है। एक वार विलग होकर पुनः उद्गम-स्थान में समाविष्ट होना उनकी प्रवृत्ति से परे है। अखिल ब्रह्माण्ड के प्रकाश-सागर प्रति मिनट अतुलित ताप व शक्ति विकिरित किया करते हैं और तौल में कम हुआ करते हैं। एक समय जब कि इन सब का प्रकाश चुक जायगा; वह, शक्ति में परिणत हो जायगा। समस्त पिण्ड सूचीभेद्य तिमिर अन्धकार में मग्न हुये होंगे। चेतनता का पुतला मनुष्य इन सब के बहुत पहले लुप्त हो चुका होगा। शेष अभिनय निपट एकान्त में समाप्त होगा। इस अव्यवस्था की चरम सीमा क्या होगी? इस महारात्रि की अवधि कितनी होगी? क्या इस प्रलय-निशा के पश्चात् पुनः सृष्टि-प्रभात होगा? ये प्रश्न: कल्पना की पहुंच से परे हैं। पर इतना ध्रुव सत्य है कि इस वर्तमान सृष्टि-दिवस के पश्चात्

यह कथन कि कल ब्रह्माण्डकी शक्ति आजसे भी अधिक अनियन्त्रित व अव्यवस्थित हो जायगी, प्रमाणित करता है कि कलकी अपेक्षा आज अधिक नियन्त्रित है, कल आजसे भी अधिक नियन्त्रित रहा होगा। इसी भांति पीछेकी ओर हटते चले जायँ तो सुव्यवस्थाकी मात्रा बढ़ती ही चली जायगी। एक स्थल आयेगा जहां सुव्यवस्थाकी पराकाष्ठा तथा ब्रह्माण्डका प्रारम्भ रहा होगा। जगतकी प्रसरण-शीलतासे भी यही निष्कर्ष निकलता है कि जो विश्वद्वीप आज विकर्षणके चक्करमें आकर दूर भागते जा रहे हैं, एक समय रहा होगा, जब यह इतने दूर न थे—पास-पास थे—प्रकाशपिण्ड कम संख्या-में थे। इससे भी पूर्व वह समय अवश्य रहा होगा जब कि सब विश्वद्वीप भिन्न भिन्न न थे एक ही में अन्तर्हित थे। बारूदका गोला आकाशमें जाकर फूट जाता है—अगणित अग्नि स्फुलिङ्ग, शून्यमें बिखर पड़ते हैं ठीक यही दशा 'ब्रह्म-अण्ड' की थी। सारा विश्व, दूरातिदूर विचरण करनेवाला आजका बृहद् विश्व, उस समय एक साधारण अणुके भीतर निहित था। यह अणु पृथ्वीके सदृश था। जब इस अणुका विस्फोट हुआ तब इससे अगणित कण अन्तरिक्षमें दूर दूर बिखर गये—इनमेंसे प्रत्येक कण छितराता छितराता अपने जनक अणुके आकारका हो गया—समय आनेपर प्रत्येकमें विघट्टन व विच्छेद हुआ फिर प्रत्येकसे पूर्ववत् सहस्रों कण बिखरे आदि। यह सिद्धान्त लेमेटे-अरका है।

यह उपर्युक्त कल्पना प्रायः सबने स्वीकार की है। एक छोटा सा बीज उपयुक्त परिस्थितियां पाकर बृहत् वृक्ष बन जाता है, फिर वृक्षसे लाखों उसी प्रकारके बीज उत्पन्न हो जाते हैं—छोटा-सा अण्डा बढ़कर पक्षी हो जाता है जो समय आनेपर फिर कई उसी पूर्व आकृतिके अण्डोंको जन्म देता है। एक छोटासा शुक्रबिन्दु मातृ-गर्भमें अनुकूल परिस्थितियां पाकर शिशु-रूप पा

जाता है जो आगे चलकर भीमकाय मल्ल भी हो जाता है। इसी प्रकार किसी भी जीवित पदार्थको उठाकर देखें तो पता चलेगा कि उसमें विश्व-रचनाकी कहानी छिपी है—वह भी उसी नियमका अनुसरण करता है जिसका अनुसरण आदि कालमें ब्रह्माण्डने किया था—और अब भी कर रहा है। वह नियम सूक्ष्मसे चलकर वृहत होना, एकसे अनेक होना और उन अनेकोंका बढ़कर उत्पादयिताके आकारका होना तथा फिर वंशानुभूत नियमानुसार सहस्रोंको जन्म देना।

तर्क द्वारा प्रमाणित करनेमें विश्व-रचनाका उपर्युक्त सिद्धान्त जितना सरल दीखता है वास्तवमें उतना सरल है नहीं। माना कि समस्त ब्रह्माण्ड प्रारम्भमें बारूदके गोलेकी भांति था—एक अणुके सदृश था और उससे सहस्रों तत्सम अणु बिखरे, पर शङ्का होती है कि वह प्रथम अणु, जिसके भीतर सब निहित थे कहांसे आया, कैसे बना, किन परिस्थितियोंको पाकर बढ़ा, और फूटा क्यों?

वर्तमान विज्ञानवेत्ता इन्हीं प्रश्नोंके अनुसन्धानमें लगे हुए हैं किन्तु मज़ा यह है कि धीरे धीरे विज्ञान उसी केन्द्रकी ओर अग्रसर हो रहा है कि जहांसे भारतीय मनीषी, दिव्य चक्षुवाले ऋषि यात्रा प्रारम्भ करते थे। यहां विज्ञान और दर्शन, वेदान्तादि एक दूसरेसेका आलिङ्गन करते देख पड़ते हैं। किसीने ठीक ही कहा था कि जहां पाश्चात्य दर्शन समाप्त होता है वहां प्राच्य यात्रा प्रारम्भ होत है। मैं यहां पुस्तकका कलेवर बढ़ जानेके भयसे इस विषय पर अधिक न कहूँगा—यहां पर केवल इतना कह देना पर्याप्त होगा कि उस रूपवान अणुका विकास रूपरहित शक्तिअविछिन्न सत्ता,अखण्ड विस्तृत चेतनासे हुआ। इस चेतना पर देश, काल, गति आदि किसी का प्रभाव नहीं पड़ता—यह अविकृत है—इसे सूक्ष्मातिसूक्ष्म दर्शक यंत्र से भी नहीं देखा जा सकता—यंत्रों से उसे ही देखा जा सकता है जो टुकड़ों में हों वे टुकड़े चाहे जितने अल्प क्यों न हों।

किन्तु जिस सत्ताके टुकड़े ही नहीं हैं अटूट है उसे यंत्रसे देखने पर नकार ही नकार दृष्टिगत होगा। वाह्य साधनों द्वारा उसे देखना दुरूह है उसे तो पुष्कल ध्यायमान व्यक्ति ही देख सकते हैं। वह 'सूक्ष्मत्वात् अविज्ञेय' है। मुझे बाल्यावस्थामें पढ़े हुए मुण्डक उपनिषद्का वचन याद आ रहा है। उस चिन्तनशील ऋषि ने एक ही श्लोक में अब तक कही जाने वाली बातों को क्या ही सुन्दरता से वर्णित किया है—ब्रह्माण्ड का तथा उसके भीतर प्रेरणा करने वाली सूक्ष्म सत्ता का वर्णन करते हुए कहता है :

बृहच्चतद्दिव्यमचिन्त्यरूपं
सूक्ष्माच्च तत्सूक्ष्मतरं विभाति।
दूरात्सुदूरे तदिहान्तिके च
पश्यत्स्वहैव निहितं गुहायाम्॥

अर्थात् (एक ओर) उसका दिव्य विस्तार इतना बृहत् है कि अचिन्त्य है। (दूसरी ओर) सूक्ष्म से भी सूक्ष्म (रूप में) व्याप्त है। दूर से भी दूर किन्तु निकटसे भी निकट है। अपनी ही गुहामें निहित हुई उस सत्ताको हर एक देख सकता है।

अभी कुछ देर पूर्व यह प्रश्न उठा था कि प्रारम्भिक अणु जिससे आगे चल कर सारा ब्रह्माण्ड और सृष्टि प्रकट हुई, किससे उत्पन्न हुआ। भगवान् ने गीता में कहा है—

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्त संज्ञके॥

अर्थात् "सम्पूर्ण दृश्यमान भुवन और लोक सृष्टि-दिवसके उषःकालमें अव्यक्त से (यानी सूक्ष्म सत्ता से क्रमशः) प्रकट हुये और अन्त में उसी अव्यक्त नामक सत्ता में, महारात्रि के आते ही लय हो जायँगे।"

ठीक इसी निर्णय पर वैज्ञानिक विद्वान भी पहुँच रहे हैं। आजके जीवित विज्ञानवेत्ता जीन्स, एडिंगटन, क्राउथर (सलीवन) आदिके लेखोंमें अव्यक्त के प्रति एक दबी हुई किन्तु स्पष्ट धारा बहती मिलती है। जे० डब्ल्यू० एन० सलीवन अपनी पुस्तक 'लिमिटेशन्स आफ़ साइन्स'(अर्थात् विज्ञानकी सीमायें) में प्रलय पर कहते हैं कि विश्वक्रियाओंका कार्यक्रम समाप्त होनेके बहुत समय पहले ही मनुष्य रंगमंचसे उठ जायगा, शेष करिश्मे अविचारणीय रात्रिमें होंगे। उस समय किसी प्रकारकी चेतना इसे देखनेके लिये न होगी।

वही उपर्युक्त सज्जन सृष्टि-प्रारम्भके विषयमें कहते हैं कि यह तब और कौतूहलजनक हो जाता है जब हम सोचते हैं कि यह अद्भुत पिण्ड जल जल कर बुझ जानेके लिये शून्यमेंसे सहसा उछल पड़ा था। यह है वैज्ञानिक धारणा। जहाँ तक इसका सम्बन्ध है यह सत्य प्रतीत होता है। पर हम लोग यह विश्वास नही कर सकते कि यही पूर्ण सत्य है (इसके अतिरिक्त और कोई बात नहीं)। हमें तो यह विश्वास करना अच्छा लगता है कि "वस्तुतः वर्तमान विज्ञान-प्रणालीकी पहुँच सीमित है।"

जेम्स जीन्स एक और शंका खड़ी कर देते हैं। उनका कहना है हम जितनी बार आंख उठाकर नक्षत्रोंकी ओर देखते हैं वज़नमें कम होता पाते हैं—पदार्थ—ज्वलन द्वारा प्रति मिनट शक्तिके रूपमें परिवर्तित हुआ करता है, पर कहीं ऐसा तो नहीं है कि हमें जो कुछ दिखाई पड़ रहा है वह तस्वीर का एक ही पहलू हो? क्या पता शक्ति भी परिवर्तित होकर पदार्थका रूप ग्रहण किया करती हो। यदि ठोस पदार्थ सूक्ष्मशक्तिमें पलट सकता है तो सूक्ष्मशक्ति भी स्थूल रूप ग्रहण कर सकती है। यदि ऐसा है तो सृजन और विनाश की अन्तहीन शृङ्खला चला ही करती है, सृष्टि और प्रलयका यमज आवर्त नृत्य चल रहा है, कुछ बन रहा है और साथ ही कुछ बिगड़ रहा है!

यदि ऐसा है तो स्वभावतः ही यह प्रश्न उठता है कि किस अंतिम लक्ष्यकी ओर प्रत्येक वस्तु वढ़ती जा रही है—सत्यानाशकी ओर नहीं तो फिर किस निर्वाणकी ओर? जेम्स जीन्सका कहना है कि इस स्थानपर हम मनमानी कल्पना कर सकते हैं। सब वातों का निष्कर्ष निकालते हुए वे कहते हैं कि हमारे ज्ञानकी वर्तमान सीमा इतने ही तक है कि **पदार्थ है**........पदार्थ रूपमें आनेके पूर्व वह क्या था कुछ नहीं जानते* ।

हमारा ज्ञान सीमित है यह सच है पर जो कुछ है वड़ा कौतुकजनक है। हम सोलहवीं शताब्दीके ज्योतिषियोंको, अन्य ग्रहोंके जीवन-युक्त होनेके तर्कोंको पढ़कर हंस देते हैं पर सच पूछा जाय तो हमें स्वयं नहीं निश्चय हो पाया कि पृथ्वीको छोड़कर और किन किन ग्रहों या नक्षत्रोंमें जीवित प्राणी हैं। पिछले आंकड़ोंसे हमने देखा था कि पृथ्वीकी सत्ता और आयु अन्य नक्षत्रोंके समक्ष नहीं के तुल्य है, यदि कहीं मानव-जीवन-विकास हो गया होगा तो उन्होंने आज तक हम लोगोंसे कई गुना अधिक ज्ञान उपार्जित कर लिया होगा। कुछ विज्ञान-वेत्ताओं का कहना है (जैसा कि हम आगे चलकर तीसरे अध्यायमें देखेंगे) कि जीवन सहस्रों परिस्थितियोंपर आश्रित है इन सबका किसी ग्रहमें उसी मात्रामें पाया जाना, जिस मात्रामें पृथ्वीमें पाई जाती है शक्य नहीं। जो हो—अभी यह विषय विवादास्पद है कुछ निश्चित नहीं।

दूरकी वात जाने दीजिये पृथ्वीके पड़ोसमें ही दस बारह मीलसे अधिक ऊंचाई पर जीवन टिकना असम्भव है। सन' ३८ तककी ऊंची से ऊंची उड़ान तेरह मील रही थी वह भी कई हानियाँ उठाकर। मानव-रहित वैलून जिसमें तापक्रम, दवाव, दूरी आदि नापनेवाले यन्त्र लगे थे २६ मीलसे ऊंचे नहीं

* इवोल्यूशन इन दी लाइट आफ़ माडर्न नौलेज (प्रथम अध्याय, पृष्ठ २०)

जा सके हैं। पृथ्वीपर पाया जानेवाला कोई पक्षी पांच मीलकी ऊंचाई पर सांस नहीं ले सकता। छोटे छोटे कीड़े-मकोड़े जीव-जन्तु आदि जो कि वायुयानमें रखकर ऊपर ले जाये गये चार मीलसे पहले ही अचेत हो गये। चतुष्पदोंकी दुनिया तो इससे भी पूर्व समाप्त हो जाती है।

यह तो हुआ पृथ्वीके वाहरका हाल अव भीतरकी ओर मुड़ा जाय। पृथ्वीका पूर्ण व्यास ८००० मील है—अभ्यन्तर केन्द्रभाग लौहतत्व का पिण्डा है, वहां जीवन सम्भव ही नहीं। मध्य भाग अग्निशिला का है, वहां भी आशा है। रहा ऊपरी भाग सतहके निकटका तीस मील गहरा पुर्त। जिस भागमें हम रहते हैं वहांसे तीनकी गहराई तक मेढ़क सर्प केचुआको मट्टीमें दवे रहनेपर भी हवा व प्रकाश खींच लेनेकी शक्ति रहती है, आगे नहीं। गहरे से गहरे समुद्रमें पांच मीलतक सूर्यप्रकाश पहुँच सकता है। यहीं तक वड़ी मछली, मगर, घड़ियाल, केकड़ा, कच्छप आदि जन्तु भोजन, वायु, एवं प्रकाश पा सकते हैं। इससे आगे जहां पर सदा अन्धकार एवं शीत रहता है, कोई जन्तु नहीं जी सकता। इस प्रकार मोटे तौरसे देखा जाय तो पता चलता है जीवन-विस्तार तेरह मील ऊपर और पांच मील भीतर कुल अट्ठारह मील तक है। १४००,०००,००० प्रकाशवर्षके व्यासवाले ब्रह्माण्डमें हमें केवल अठ्ठारह मीलतक पाये जानेवाले जीवनका ठीक-ठीक ज्ञान है।

किन्तु इससे निराश होनेकी आवश्यकता नहीं है। हममेंसे नब्बे प्रतिशत साथी तो ऐसे हैं जिन्हें इतना भी विदित नहीं। माना कि हमारा ज्ञान सीमित है, प्राणिविस्तार नहीं के तुल्य है पर जितना भी है अद्वितीय है, अद्भुत है और आश्चर्यमें डाल देनेवाला है।

३

भू-रचना

हमने पिछले अध्यायमें देखा था कि मनुष्यने सूर्य, चन्द्र, बुध,शनि इत्यादि के विषयमें विचार करना बहुत पहले आरम्भ कर दिया था किन्तु भू-रचना पर दृष्टि न गई थी। किसीके मनमें आशंका ही न उठती थी कि पृथ्वी वर्तमान रूपमें कैसे पहुंची। सम्भवतः शंका न उठनेका एक कारण यह भी था कि उन्होंने मान रखा था कि सृष्टि अनादि है अर्थात् जिस रूपमें हम देख रहे हैं इसी रूपमें सदैव रही है और रहेगी। अन्त और आरम्भ होता ही नहीं। किन्तु जब मनुष्यने सब पदार्थोंकी नश्वरता देखी और विज्ञान द्वारा पदार्थविश्लेषणकी शक्ति पाई तब समझा कि सबकी भांति पृथ्वीका भी आदि और जन्म हुआ था। भूगर्भवेत्ताओंने धरातलके भीतर दबी पड़ी रहनेवाली चट्टानोंको पढ़ा उसमें प्रकृतिने स्वयं अपनी आत्मकथा नुकीले अक्षरोंमें खोद रखी थी। उसीके आधारपर हमें पृथ्वी-निर्माणकी कथा विदित हो सकी।

प्रायः सब धर्मोंमें इस प्रकारके प्रश्नों पर चर्चा मिलती है कि पृथ्वी किसने बनाई, ऊंचे ऊंचे पर्वत व समुद्र किसने बनाये आदि। बहुधा इनके उत्तर देने-का काम धर्मगुरुओंके हाथ रहता रहा। सबका सीधा सादा उत्तर होता था 'ईश्वरने बनाये'। किस क्रमसे बनाये सो पता नहीं। इन सबका उसीके द्वारा बनाये जानेका एक और कारण था—उसकी महत्ता बढ़ाना, सर्व शक्तिमान होनेका प्रमाण दे सकना आदि। यह दशा पिछली शताब्दी तक रही। किन्तु जबसे वैज्ञानिक अनुसन्धान व पार्थिव शोधने ज़ोर पकड़ा तबसे अटकल पच्चू गप्पोंका लड़ाया जाना बन्द हो गया।

इस दिशामें वैज्ञानिक खोज करनेवाला सर्व प्रथम दार्शनिक लाप्लास हुआ। यह फ्रान्सीसी था—कोई डेढ़सौ वर्ष पहले। यही वह व्यक्ति था जिसने सर्व प्रथम—ज्योतिष इतिहासमें सर्व प्रथम—घोषणा की कि पृथ्वी, मङ्गल, शनि इत्यादि ग्रह आरम्भमें भिन्न न थे अपितु सूर्यमें समाये हुये थे। इसके पहले इन सबोंको स्वतन्त्र, परस्पर असम्बन्धित मानते थे। हिन्दू ज्योतिषमें यह त्रुटि अब भी दीखती है, चन्द्रमाको ग्रह माना जाता है यद्यपि विज्ञान द्वारा उपग्रह प्रमाणित हुआ है। स्वयं सूर्यको मंगल, शनि आदि की भांति ग्रह माना गया है जिससे विदित होता है सूर्य तथा अन्य ग्रहोंके बीच पिता-पुत्रका सम्बन्ध ज्ञात था। जो हो, आजसे लगभग डेढ़ सौ वर्ष पहले मनुष्यने जाना कि हमारी पृथ्वीका जन्म सूर्यसे हुआ। मानव शंकाशील तो था ही पूछना प्रारम्भ कर दिया, क्यों हुआ, किस शक्तिने अथवा किस घटनाने सूर्यको खण्ड बिखेर देनेके लिये विवश किया। इसी शंकाने भू-जन्मकी उलझी हुई गुत्थी सुलझाई, इसका उत्तर देनेके लिये, कुछ ही वर्ष हुए कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयके प्रसिद्ध विद्वान् सर राबर्ट बॉल आगे आये। पहलेसे चली आनेवाली 'टाइडल थ्योरी' या ज्वार-भाटा-सिद्धान्त यहां भी प्रयुक्त किया और बताया कि अनन्तकाल

पूर्व जब पृथ्वी मंगल आदि एक भी ग्रह उत्पन्न न हुआ था हमारा सूर्य शून्यमें धधका करता था। उस समय वह सन्तानहीन था। अकस्मात् कोई अन्य महासूर्य जो कि हमारे सूर्यसे कई गुणा बड़ा था पथभ्रष्ट होकर इसके पाससे निकला। यह महासूर्य हमारे सूर्यसे कई गुना अधिक शक्तिशाली था—अतः हमारे सूर्यमें ज्वार-भाटे उत्पन्न कर दिये जिस प्रकार कि सूर्य और चन्द्रमा मिलकर हमारे समुद्रमें उत्पन्न किया करते हैं। हमारे सूर्यका बहुत बड़ा भाग महासूर्यकी ओर खिंचने लगा। जब महासूर्य बिल्कुल निकट आ गया तो वह इतना खिंचा कि सूर्यसे पृथक् हो गया। महासूर्य अपने मार्ग चला गया; किन्तु यहां एकसे दो कर गया। यही घटना थी जिसने ग्रहोंको जन्म दिया। यदि महासूर्य समीपसे होकर न निकला होता तो आज भी हमारा सूर्य पहलेकी भांति अकेला धधका करता। टैलिस्कोप द्वारा देखनेसे पता चलता है कि आकाशमें कई सूर्य ऐसे हैं जिनके एक भी ग्रह नहीं। हमारा सूर्य भी उन्हींकी भांति हुआ होता। जिन सूर्योंके ग्रह हैं उनके भी इसी प्रकारकी घटना द्वारा होते देखे गये हैं।

अलग हो जानेवाला, सिगारनुमा भाग, ज्योतिर्नियमानुसार, अपने पिता सूर्यकी परिक्रमा करने लगा। निरन्तर गतिपूर्ण होनेके कारण इसके कई खण्ड हो गये सब खण्ड एक से न थे। कुछ बड़े थे कुछ छोटे। बड़े खण्डोंने छोटे खण्डोंको अपनी ओर खींचकर निजमें मिलाना प्रारम्भ कर दिया। इन बड़े खण्डोंमें अल्पांश जितनी अधिक मात्रामें सम्मिलित होते गये, आकार बढ़ता गया। आकार बढ़नेके साथ ही साथ उन खण्डोंकी आकर्षणशक्ति बढ़ती गई—अन्तमें एक वह समय आया जब कि बड़े बड़े दस स्पष्ट ग्रहपिण्ड शेष रह गये अन्य सब इन्हींमें अन्तर्हित हो गये। इन्होंने पड़ोसी निर्बल खण्डोंको अपनेमें समाविष्ट कर लिया। ऐसा होना केवल इसी कारण सम्भव हो सका

क्योंकि वे सब पिण्ड उस समय गैस-अवस्थामें थे। गैस—जलती हुई गैसके कन्दुक सदृश। किन्तु अभी उसमें उष्णता न थी। उस समय छितराई हुई गैस-के अणु इतने सूक्ष्म थे और वे इस मन्थर गतिसे एकत्रित हो रहे थे कि उष्णता अल्प मात्रामें उत्पन्न हो सकती थी। किन्तु इन अल्प अणुओंका एकत्रीकरण व समाहार अबाध गतिसे होता रहा—बड़े खण्डोंको आकर्षित करनेसे कोई न रोक सका उनका आकार शनैः-शनैः बढ़ता रहा। एक समय आया जब कि उनका आकार—एकत्रित वाष्पमेघका आकार पर्याप्त मात्रामें बढ़ गया, आकर्षण शक्तिकी तीव्रता तब तो बहुत बढ़ गई। अब क्या था अल्प खण्ड और भी त्वरित वेगसे खिंचने लगे—टकराने लगे—टकरानेकी तीव्रता बढ़ती गई। फल-स्वरूप, सङ्घर्षण एवं गतिने तापमान बढ़ा दिया। गैस अवस्थावाले ग्रहका केन्द्रीय कुण्डलित भाग सघन और ठोस एवं गुण्ठित हो ही गया था, सङ्घर्षणकी गर्मी पाकर अपनेको न सम्भाल सका। पिघल चला।

यह तरल अवस्था दूसरी मुख्य घटना थी जिसने ग्रहोंमें भारी परिवर्तनों-को निमन्त्रण दिया। पृथ्वीकी भी यही दशा हुई। सम्पूर्ण पिण्ड पिघला न था। केवल मध्यवर्ती ठोस भाग ही द्रव रूपमें हुआ था। केन्द्रीय मध्य भागको छोड़कर शेष ऊपरी खोल गैसके रूपमें ही बना रहा। तरल भागको गैस भाग उसी प्रकार घेरे हुये था जिस प्रकार गरीके गोलेको नारियलकी जटायें। आगे चलकर हम देखेंगे कि तरल भाग कड़ा होकर पृथ्वी कहलाया (जिसपर हम चला करते हैं) और गैस भाग शुद्ध हो जानेपर वायुमण्डलके रूपमें पलट गया। यह भी देखेंगे कि अशुद्ध वायुमण्डलको शुद्ध करनेमें वनस्पति जगतने कितना अधिक हाथ बटाया। बहुतोंकी धारणा होती है कि पृथ्वीसे वायुमण्डल भिन्न है, पर उनकी यह धारणा भ्रमपूर्ण है। वातावरण या वायुमण्डल पृथ्वीका ही अभिन्न अङ्ग है। जिसे वह गुरुत्व शक्तिके बलपर अपनी ओर खींचे रहती

है, जब गुरुत्व शक्ति न रहेगी तब वायुमण्डल भी अन्तरिक्षमें विलीन हो जायगा। अन्य ग्रहोंके भी वायुमण्डल हैं। मङ्गल ग्रहका वायुमण्डल उन सबमें अधिक स्पष्ट, शुद्ध, व पारदर्शी है। इसीसे अनुमान लगाया जाता है कि वायुमण्डलमें आक्सीजन उडेल देनेवाले सदस्यों अर्थात् वृक्षोंका प्रादुर्भाव वहां हो चुका है।

पृथ्वीका मध्य भाग कोई ५००० वर्षतक तरल होता रहा। इसी बीच उस तरल पदार्थमें कई रासायनिक क्रियायें हो गईं। अब यह केवल पतला ही न था वरन् कुछ कुछ गाढ़ा, रक्तोष्ण लावाके रूपमें था। गर्म दूधके ऊपर जमनेवाली मलाईकी भांति इस उष्ण चाशनीकी ऊपरी सतहपर भी पपड़ी जमने जा रही थी कि चन्द्रमाका जन्म हुआ।

चन्द्रमाकी जन्म-समस्या हल करनेके लिये वैज्ञानिकोंने बड़े-बड़े मनोरञ्जक सिद्धान्त बताये हैं। ग्रन्थ-विस्तार के भयसे हम लोग केवल कुछ एकपर दृष्टिपात करेंगे।

जी० डार्विनका कहना है कि जब पृथ्वी गैस-तरल अवस्थामें थी तब आजकी पृथ्वीसे कई गुना बड़ी थी। प्रथम तो इसलिये कि उसमें चन्द्रमा सम्मिलित था दूसरे इसलिये कि छितराई हुई अवस्था में थी—संकुचित और ठोस जमी हुई अवस्थामें नहीं। उस समय सूर्यसे भी इतनी दूर न थी जितनी आज है। तब केवल चार घण्टेमें ही कीलीका चक्कर लगाती थी जब कि आजकल चौबीस घण्टोंमें। यानी उस समय दो घण्टेकी रात थी और दो घण्टेका दिन। तात्पर्य यह कि घूमनेकी चाल अत्यन्त तीव्र थी। आजकल सूर्यका चलना विदित नहीं हो पाता, उस समय सूर्य दौड़ता हुआ स्पष्ट दीखता होगा। अभी चन्द्रमाका जन्म न हुआ था।

इधर पृथ्वीका केन्द्रीय मध्य ठोस भाग तरल होनेमें लगा था उधर सूर्य-की प्रचण्ड "आकर्षक-खैंच" पृथ्वीमें ज्वार-भाटे उत्पन्न कर रही थी। भूमध्य

रेखाकी पेटीवाला भाग सूर्यकी ओर लम्बायमान होकर खिंच रहा था। सूर्य निकट था—'खैंच' की ढोर प्रबल थी, कटि-प्रदेश इतना खिंचा कि पृथ्वीसे अलग ही हो गया। उसी वंशानुगत पद्धति-अनुसार जिसके अनुसार सूर्यसे ग्रह उत्पन्न हुये थे।

चन्द्रमा उत्पन्न हुआ सो तो हुआ ही एक लाभ स्वतः हो गया। वह यह कि जितने भागसे चन्द्रमा निर्मित हुआ उतने स्थानमें गहरे गहरे खड्ड बन गये जो आगे चलकर प्रशान्त, हिन्द, अटलाण्टिक आदि महासागरके रूपमें परि-वर्तित हो गये। इस समय इनमें पानी न था, सूखे खड्ड थे।

चन्द्रमाकी उत्पत्तिपर बड़ा वाद-विवाद चल रहा है—कुछ कहते हैं कि जब पृथ्वी गैस-रूपमें थी तभी चन्द्रमाका जन्म हुआ था, कुछ कहते हैं कि जब तरल होना प्रारम्भ हो गया तब हुआ और कुछ वैज्ञानिक कहते हैं कि जब तरल भागमें पपड़ी जमना प्रारम्भ हो गया तब हुआ। अन्तिम मत ही अधिक मान्य है क्योंकि प्रथम दो मत माननेमें समुद्रोंकी उत्पत्तिके लिये गुञ्जाइश नहीं रह जाती। यदि गैस-अवस्थामें या तरल अवस्थामें चन्द्रमा विलग हुआ होता तो रिक्त स्थानकी पूर्ति उसी प्रकारके पदार्थसे हो सकती थी—गहरे गहरे खड्ड न बन पाते। अवश्य ही चन्द्रमाकी उत्पत्ति उस समय हुई होगी जब तरल पदार्थमें पपड़ी जम चली थी, वह जम चला था—जितने भापसे तरल पदार्थ निकल गया वह रिक्त रह गया,शेष जहांका तहां जम गया।

इस समय पृथ्वीमण्डलपर कई घटनायें एक साथ हो रही थीं—ड्रामाके कई प्लाट एक साथ चल रहे थे। एक ओर पृथ्वीका कटि-प्रदेश चन्द्रमाके रूपमें उससे विलग हो रहा था, दूसरी ओर पिघला हुआ भाग ऊपरी सतहपर पर शीतल होकर जम रहा था—जमी हुई पपड़ीके नीचे खौलता हुआ अथाह तरल पदार्थ टक्कर मार रहा था। प्रारम्भिक गैससे अवगुण्ठित धराके भीतर,

वाहर, चारों ओर अशान्ति थी। सूर्यकी "आकर्षक-खैंच" और भी नाकमें दम किये थी, उथल पुथल मचा रही थी, ऊपरी पपड़ी हर घंटे सामुद्रिक नौकाकी भांति डगमग डगमग होती। जिस स्थानपर पपड़ी दुर्वल होती नीचेका रक्तोष्ण लावा पिचकारी चलाता हुआ ऊपर निकल आता। ज्वालामुखी स्रोतसे निकली हुई यह पिचकारी सुदूर आकाशतक सरसराती चली जाती और गन्धक हाइड्रोजनादि निजी सम्पत्तिको वायुमण्डलमें विखेर देती। जो गैसका वायु-मण्डल गरीको घेरे रहनेवाले जटाओंकी भांति पृथ्वीको घेरे था उसमें जहां अन्य पदार्थ थे तहां एक पदार्थ आक्सीजन भी था। जैसे ही ज्वालामुखीसे निकलनेवाले लावाकी हाइड्रोजनका वातावरणको आक्सीजनसे उपयुक्त मात्रा (एक परिमाणु आक्सीजन दो परिमाणु हाइड्रोजन) का मेल हुआ कि आकाशमें—पृथ्वीपर प्रथम वार जल उत्पन्न हो गया। यह जल निरन्तर धरातलपर गिरता रहा किन्तु गर्मीकी अधिकताके कारण नीचेतक न आ पाता, वीच हीमें सूख जाता था। यह कार्य वर्षों होता रहा। धीरे धीरे जव उष्णता कम हुई तव पानीकी वूंदें नीचेतक आने लगीं। अव क्या था मूसलाधार वर्षा तक होने लगी। अटूट गतिसे पानी वरसा करता। कुछ ही घंटोंमें सौ-सौ, दो-दो सौ इंच पानी वरस जाता। इस प्रकारकी वर्षा अव कहीं नहीं होती। वह पानी इतना शीतल न था जितना कि आजकल वरसा करता है—अपितु 'वारिद तप्त तेल जनु वरसा' वाली कहावत थी।

यह वर्षा—सृष्टिकालीन वर्षा सामुद्रिक वाष्पके कारण न थी अपितु रासायनिक गैसों हाइड्रोजन और आक्सीजनके आनुपातिक मेलसे थी। अतः अचानक एकाएक प्रचण्ड धाराओंके रूपमें पृथ्वीपर गिरा करती।

कहा जा चुका है कि कई घटनायें एक साथ हो रही थीं। ऊपरसे घन-घोर वर्षा हो रही थी, नीचे गीला धरा-पृष्ठ जमनेकी इच्छा कर रहा था।

तत्कालीन गीली चट्टानोंपर गिरनेवाले वृष्टि-धार चिन्ह आज भी ज्योंके त्यों अंकित पाये गये हैं। अमेरिकामें कई चट्टानें पृथ्वीके, सबसे नीचे तहमें पाई गई हैं जिनमें आदि कालीन वर्षाके पदाङ्क स्पष्ट प्रतीत होते हैं। आजकलकी भांति उस समय पृथ्वीपर हरे घासके मैदान श्याम धान्यकी चादर न थी और न कोई जीव-जन्तु ही थे। उस समय तो केवल विंध्य पर्वत सदृश कड़ी ऊंची चट्टानें या गहरे खड्ड—बस इससे अधिक कुछ नहीं—मट्टी रेत आदि भी कुछ न थे। चट्टानोंपर जलधारायें प्रचण्ड वेगसे चारों ओर दौड़ा करतीं, जिधर ढालू पातीं ढल जातीं। नदी, सरोवर, झील, पोखर, ताल लहराने लगे। कई नदियां मिल कर गहरे निर्जल खड्डोंकी ओर दौड़ जाने लगीं। पृथ्वीके जिस मार्गसे चन्द्र-निर्माणके लिये चन्दा दिया गया था, मटमैला, तप्त जल उसी भागका, भाव पूरा करने लगा। कुछ वैज्ञानिकोंका कहना है कि समुद्रोंमें पाई जानेवाली जलराशि केवल आकाशकी ही देन नहीं है अपितु तत्कालीन जमनेवाली चट्टानोंकी भी। उनका मत है कि तरल धराखण्डका जो भाग जमता गया प्रस्तर होता गया, जो तरल ही बना रहा वह जल-रूपमें प्रयुक्त हो गया जिस प्रकार कि दूध जम जानेपर जमा हुआ भाग अलग हो जाता है और बिना जमा भाग जलके रूपमें। कुछ भी हो इन दो साधनों—आकाशीय गैस तथा तरल-धराखण्डके अतिरिक्त और कोई साधन नहीं दीखता जिससे समुद्रोंमें इतना जल पहुंचा होगा।

तरल भागको घेरे रहनेवाले गैस-वितानसे जितना अधिक पानी बनकर नीचे बरसता गया गैसावरण उतना ही विदीर्ण हो फटता गया। होते होते एक समय आया जब कि गैस आवरणका नामनिशान न रहा। उस धुंधले कुहरेके स्थानपर सूक्ष्म स्वच्छ पारदर्शक वायुसमुद्र लहराने लगा। यही वायुमण्डल भावी जीवन-यात्राकी पृष्ठभूमि थी। यद्यपि अभी यह विष-रहित

न था तथापि पहले जैसा धुंधला न था इतना स्पष्ट था कि इस पारसे उस पारकी वस्तुयें दीख पड़ सकती थीं।

सूर्यरश्मियां नीचे धरातल तक उतर आनेमें सफल हुईं। अभी तक जब कि गैसका अवगुण्ठन छाया था सूर्यको धरामुख दृष्टिगोचर न होता था। किन्तु अब मार्गमें कोई रुकावट न थी। अब न जाने कितने वर्षों-पश्चात् पृथ्वी अण्डा फोड़कर निकलनेवाले पक्षीकी भांति पर्देसे वाहर आयी और अपने पिता सूर्यके दर्शन कर सकी। अबसे वास्तविक दिन रात्रि प्रारम्भ हुए। इसके पूर्व दिन किस प्रकारका हुआ करता था पाठक स्वयं कल्पना कर लें।

यह तो हुआ पृथ्वीके वाह्य जगतके वातावरणादिका दृश्य। अब पृथ्वीके अन्तरङ्गमें प्रवेश करके देखा जाय। जिस समय वाह्य धरातलकी पपड़ी जम चली थी उसी समय अभ्यन्तरकी ओर भी Solidification—अर्थात् सघनता प्रारम्भ हो गई थी। ऊपरवाला भाग जम जानेके कारण भारी हो गया। भारी होनेसे नीचेकी ओर धंसका। पपड़ीके डूवते ही नीचे खौलनेवाले लावासागरकी विशाल धाराएं ऊपर उठ आईं और पपड़ीकी पीठपर छितराने लगीं। वाहरका तापक्रम भीतरी तापक्रमसे कम था—वाहर शीतलता अधिक थी। अतः पपड़ीपर छितरानेवाली गीली चाशनीसे शीतल होकर जमने लगी। इस प्रकार चट्टानोंके दो पर्त जम गये। दो पर्त हो जानेपर पपड़ीका वोझ और भी वढ़ा—अबकी वार दोनों स्तर नीचेको धंसके। पहलेकी भांति फिर नीचेका तरल उष्ण लावा ऊपर उठा, ऊपर चट्टानपर छितराया, शीतल हुआ और जमा। इस प्रकार चट्टानोंके ऊपर चट्टानें जमती गयीं। इन्हें 'भूगर्भ-प्रस्तर-शृङ्खला' कहते हैं। इन्हीं चट्टानोंकी सहायतासे विद्वानोंने पृथ्वीकी आयु, अवस्था, विकास क्रमादि अङ्कित कर लिये। किस प्रकार किये यह कुछ देर पश्चात् सोचेंगे।

इन प्रस्तरखण्डोंमें बड़ी आश्चर्यजनक क्रियायें हो रही थीं। इधर ऊपरी सतहपर चट्टानें बनती जा रही थीं, उधर सबसे नीचे दब जानेवाली चट्टान दबाव तथा आन्तरिक दाहके कारण पिघल रही थी। बीचवाली चट्टानें भी ऊपरी दबाव और नीचेके तापक्रमसे कायाकल्प कर रही थीं। तापकी मात्रा भिन्न होनेके कारण धातुएं भी भिन्न प्रकारकी बनीं। यह भी नियम नहीं है कि बनते समय जिस धातुकी बनी थीं आज तक उसी धातुकी हैं। अटूट गतिसे बनते रहनेके कारण धातु-परिवर्तन भी होता चला आया है। पृथ्वीके जिस भागपर हम लोग बैठे हुए हैं यदि उसे नीचे तक खोदा जाय तो कई प्रकारकी धातुओंकी चट्टानें मिलेंगी। कुछ पर्त खड़िया मिट्टीके होंगे तो कुछ कड़ी मिट्टीके, कुछ भूरे-भूरे श्वेत सङ्गमरमरकी होंगी तो कुछ तेलिया पत्थरकी आदि। कोई स्थान ऐसा न होगा जहां इस प्रकारकी अथवा किसी अन्य प्रकारकी चट्टानोंके एकसे अधिक पर्त न पाये जायं। इन सब पर्तोंकी रचना उपर्युक्त रीतिसे हुई थी। मैदानी प्रान्तोंमें भूमिको खोदा जाय तो कुछ दूर तक भिन्न-भिन्न प्रकारकी मिट्टियों (श्याम, पीत, श्वेत, धुरुवे) की तहें मिलेगी। इनकी रचना उपर्युक्त प्रणालीसे न हुई। इनकी सृष्टिका श्रेय पर्वतोंको पीसकर धरापृष्ठपर चूर्णिताङ्ग राशि वितरित करनेवाली जलधाराओंकी है। जलवृष्टिने यह काम असंख्य वर्षोंमें कर पाया है। जे० डबल्यू० एन० सलीवनका अनुमान है कि प्रति ४००० वर्ष पीछे एक फुट तह जमनेका औसत देखा गया है। इससे सैकड़ों व हजारों फीट गहरे पुर्तोंका रचना काल आंका जा सकता है। यह काम—पर्वतोंको पीसकर धरातलपर ले आनेका काम, जलवृष्टिने ही किया है। जलने पर्वतोंकी ऊंचाई इतनी छोटी कर दी है कि प्रारम्भिक ऊंचाईका पता लगाना मनुष्यके लिये कठिन सा हो गया है। इन उच्च नुकीले शैल-शृङ्गोंकी रचनाविधि भूगर्भ-प्रस्तर-शृङ्खलाके अनुसार नहीं हुई।

इन पर्वतोंकी उत्पत्ति भिन्न विधिसे हुई। पिछली पंक्तियोंमें हमने एक चट्टानके ऊपर दूसरी चट्टान जमनेवाली परम्परा देखी थी। यह परम्परा शनैः शनैः शिथिल होती गई। लगभग १०,००० वर्ष बाद यह क्रिया समाप्त-सी हो गई। कारण कि इतने समयमें चट्टानोंके कई पुर्त लग चुके थे। उनका नीचे धंसकना वन्द हो गया था। नीचेवाला तरल पदार्थ भी उन्हें पार करके ऊपर न आ सकता था। परन्तु स्मरण रहे यह आठ-दस मञ्जिलवाला गुम्मट स्तम्भहीन था, आधारहीन था। शेषनागके फनपर अथवा कच्छप भगवानकी पीठपर न टिका था—तरल सागरपर रखा था। अपने ही वलपर सधे रहने-वाले महरावकी भांति अघड़पर सधा था। आखिर बेचारा कहां तक सधा रहता। एक समय आया जब कि कुड़कन, सिमटन, संकोच, झुर्रियां पड़ना आदि प्रारम्भ हो गया। जो भाग निर्वल था टूटा, नीचेसे पिचकारीकी धार आकाश तक जा जाकर भूमिपर गिरने लगी, लावा राशिके पीरेमिड पर पीरेमिड वनने लगे। कीचड़के गगनचुम्वी ढेरोंका जमघट लग चला। यही नुक़ीली राशियां पर्वत हुईं—हिमालय, पिरेनीज़-इन्डीज़ शृङ्खलाएं इसी प्रकारकी घटनाओंके परिणाम स्वरूप वने। इतने विशाल विस्तृतमालाको जन्म देनेवाले ज्वाला-मुखियोंने कितने वर्षों तक लावा उगला होगा, कहा नहीं जा सकता। उस युगका दृश्य कितना भीषण रहा होगा—प्रगाढ़ सघन, कृष्ण, कीचड़से आच्छादित आकाश और धरा पृष्ठपर रक्तोष्ण लावाकी अटूट मूसलाधार वृष्टि। जिस समय भूमिखण्ड और आकाश मिलकर पिचकारीसे होली खेल रहे थे उसी समय समुद्र और चन्द्रमा मिलकर जलराशि रूपी गेंदसे फुटवाल खेल रहे थे। अन्तर केवल इतना था कि भूमि और आकाशके बीच कीचड़का आवागमन था और समुद्र व चन्द्रमाके बीच विशाल ऊर्मिजाल की। इन उत्तालतरङ्गित ऊर्मिमालाओंको ज्वार-भाटा कहा जा सकता है। किन्तु आजकल समुद्रमें

उठनेवाले ज्वार-भाटोंकी भांति ये शान्तिप्रेमी न थे। वे अत्यन्त चञ्चल तथा गगनचुम्बी थे। प्रोफेसर हेरेल्ड जैफरीके मतानुसार आजके ज्वार-भाटोंसे १५००० गुने ऊंचे उठते थे। आजके जल-उत्थानकी ऊंचाई लहरोंके अतिरिक्त ३/४ फीट ऊंची है जब कि उस समय २॥ मील ऊंची होती थी—कितना भयावह दृश्य रहता होगा। ढाई मील ऊंची जलराशिका उठने और गिरनेका भीषण रव दिग्दिगान्तरोंमें प्रध्वनित हुआ करता। इन ऊंचे-ऊंचे ज्वार-भाटोंके उठनेका कारण था कि चन्द्रमा अत्यन्त समीप था। आज चन्द्रमाकी दूरी २४०,००० मील है उस समय केवल ९६० मील थी। पृथ्वी और चन्द्रमा दोनों ही बड़ी क्षिप्र गतिसे घूम रहे थे। पृथ्वीके विषयमें कहा जा चुका है कि चार घण्टेमें घूम जाती थी—दो घण्टेका, दिन दो घण्टेकी रात। चन्द्रमाको पृथ्वीका चक्कर लगानेमें पांच घण्टे लगते थे। हर ढाई घण्टेमें पूर्णिमा व अमावस्या बारी बारीसे होते थे। चन्द्रमा पृथ्वीके अत्यन्त निकट था। अतः तृतीया, चतुर्थी, अष्टमी, और चतुर्दशी आदि होती थी या नहीं, यदि हां तो किस प्रकारकी यह कल्पना पाठक स्वयं कर लें। पूर्वसे पश्चिम तक जितना मार्ग आजकल चन्द्रमा पूरे बारह घण्टोंमें पार करता है उतना उस समय केवल दो या ढाई घण्टोंमें पार करता था, इसका अर्थ यह हुआ कि उस समय एक ओरसे दूसरी ओरको भागता हुआ बड़ा सा चन्द्रमा स्पष्ट दिखता था। एक विचित्र बात और थी जो आज नहीं होती—उस समय चन्द्रमाके दोनों पहलू दीखते थे जब कि आजकल सदा एक ही भाग दिखलाई देता है। हमें अब सिक्केका एक ही पहलू देखनेको मिलता है; कारण यह कि चन्द्रमा अपनी धुरीपर नहीं घूमता। केवल पृथ्वीकी प्रदक्षिणा मात्र करता है। उस समय चन्द्रमामें आकर्षणशक्ति अधिक थी अतः अपनी कीलीपर भी घूमता था। जिस समय अपनी कीलीपर घूमता था उस समय आकाशसे होकर

निकलनेपर बारी बारीसे दोनों पहलू दिखाता जाता था। इस लुढ़कते-पुढ़कते वृहत चन्द्रका द्रुतगतिसे भागना कितना चित्ताकर्षक रहता होगा, किन्तु खेद है कि इसे देखनेके लिये हममें से कोई उत्पन्न न हो पाया था। और तो और पशु-पक्षी, वृक्षादि भी न थे।

क्या ही आंखमिचौनी हुआ करती ! चन्द्रमा तो पृथ्वीके समीपसे होकर परिक्रमा किया करता ही था, ढाई मील ऊंची लहरें उसे छूनेके लिये दौड़ा करतीं—समुद्रोंका सारा पानी चन्द्रमाकी ओर खिंच जाता—दूसरी ओरका समुद्रतल जलशून्य हो जाता—पृथ्वी व चन्द्रमाके बीच लम्बा बेलन फैल जाता। इसकी गति भी अत्यन्त तीव्र थी—५००० मील प्रति घंटा। प्रत्येक वस्तुमें गति थी, कम्प था—पृथ्वीमें उथल, पुथल, चन्द्रमामें क्रान्ति, समस्त पर्वतोंमें कम्प, जिधर देखो उधर कम्प था।

समुद्रमंथनके इस युगमें प्रायद्वीपोंकी रचना हुई और चारों ओर रुद्रका ताण्डवनृत्य होता रहा। होना स्वाभाविक ही था। सद्यःनिर्मित शैलखण्ड तूफ़ानी लहरोंमें डगमगानेवाली नौकाकी भांति दोलित हो रहा था। प्रायद्वीपों व समुद्रोंका बटवारा हो रहा था, चन्द्रमा और सूर्य ढाई मील लम्बी जलरज्जु की मथानी पकड़कर समुद्र मथ रहे थे। चट्टानों, पर्वतों, प्रायद्वीपों आदि स्थलखण्डोंका नवनीत ऊपर उठता आ रहा था।

किन्तु यह तूफ़ानी दृश्य सदैव ही न बना रहा। शनैः २ इसकी भी तीव्रता कम हुई। किसने कम की ? इसे समझनेके लिये कल्पना कीजिये किसी ऐसे प्रदेशकी जहां बारहो मास तीव्र वायुवेग प्रवाहित होता रहता है, दो हवाई चक्र हवाके बलपर घूम रहे हैं। एक चक्र बड़ा है दूसरा छोटा। उन दोनोंके ऊपर एक चौड़ी पट्टी लपेट दी गई है। यदि यही न लपेटी जाती तो दोनों चक्र हवाके साथ साथ स्वतंत्र गतिसे घूमते रहते। पट्टी बंध

जानेसे उनकी स्वतंत्रता जाती रही। उसकी गति अवरुद्ध हो गई तथा पहले की भांति स्वतंत्रभ्रामी न रह सकी। चन्द्रमा व पृथ्वीवाले गोलोंकी दशा भी ज्वार-भाटेकी पट्टी द्वारा नहीं हो गई। दोनोंकी गतिमें रुकावट आती गई। यह गति-अवरोध अत्यन्त सूक्ष्म तथा मन्द था पृथ्वी स्वच्छन्दतासे न घूम सकती थी—पानीकी ढाई मील ऊंची कगार उसे पीछेको खींचती, गति वेगमें रुकावट पड़ता। पृथ्वीके घूमनेकी गति रुकनेका अर्थ हुआ "दिनकी लम्बाई बढ़ते जाना।" यह बढ़ना लगभग अज्ञात-सा था। प्रति १२००० वर्षमें दिनकी लम्बाई एक सेकेण्ड बढ़ती। इसी गतिसे बढ़ते-बढ़ते चौबीस घंटेका दिन रात होने लगा है। कहां पहले चार घंटेका होता था। जैसे ही जैसे समय बीतता गया गति मन्द होनेकी मात्रा बढ़ती गई। दिनमान बढ़नेकी मात्रा भी बढ़ती गई।

यह काम ज्वार-भाटेने किया। उसने दिनकी लम्बाई तो बढ़ाई ही साथ ही साथ पृथ्वीको चन्द्रमासे दूर भी किया प्रारम्भमें चन्द्रमा समीप था—ज्वार भाटेके कारण दोनों एक दूसरेसे दूर होते गये। वैज्ञानिकोंका कहना है कि भविष्यमें भी यह ग्रह एक दूसरेसे दूर होते चले जायेंगे—यह क्रिया अगणित वर्षोंतक चालू रहेगी, तबतक न रुकेगी जबतक पृथ्वीका अपनी कीली पर घूमनेवाला समय और चन्द्रमाके परिक्रमा लगानेका बराबर बराबर न होने लगेगा उस समय पृथ्वीकी चाल अत्यन्त मन्द हो जायगी दिनकी लम्बाई भी बहुत हो जायगी। अनुमान है कि चौबीस घण्टेका दिन न होकर ४७ दिनका एक दिन हुआ करेगा। तात्पर्य यह कि सूर्य आज जितने मार्गको १२ घण्टोंमें तय करता प्रतीत होता है उसे २५॥ दिनोंमें (१ दिन=२४ घण्टे) तय करता प्रतीत हुआ करेगा। आगे चलकर एक समय यह भी आयगा जब पृथ्वीका अपनी धुरी पर घूमना सर्वथा रुक जायगा। जो भाग सूर्यके

समक्ष रह जायेगा वही सदैव उजेलेमें रहा करेगा, शेषभाग अंधेरेमें। पृथ्वीकी आकर्षणशक्ति भी वह न रहेगी जो आज है अतः वायुमण्डलको रोके रखना अशक्य हो जायगा—वह अनन्तमें विलीन हो जायगा। वायुके हवा होते ही जल, वनस्पति, जीव आदि सब स्वतः लुप्त होते जायेंगे, ठीक वही दशा हो जायगी जो आज चन्द्रमाकी है। किन्तु घवड़ानेकी आवश्यकता नहीं। ऐसा होनेमें अभी न जाने कितने मन्वन्तर लगेंगे। तब तक मनुष्यकी वैज्ञानिक शक्ति न जाने कितनी वढ़ जायगी। वह शायद पड़ोसी ग्रह मंगलमें उड़ जायगा—बृहस्पतिमें भी तब तक जीवनके लिये उपयोगी परिस्थितियां उत्पन्न हो जायंगी। उड़नेमें सफलताके लक्षण अभीसे दिखलाई दे रहे हैं। पचीस वर्षकी नन्हीं-सी आयुमें ही इस कलाने आशातीत गुल खिला दिये हैं।

इस प्रकार हमने देखा कि भू-रचनाके समय चारों ओर यन्त्रारूढ़ की भांति एक साथ कई क्रियायें हो रही थीं। जब पृथ्वी गैसरूपसे तरलावस्थामें आ रही थी, तरल पदार्थ शीतल हो रहा था, इधर पपड़ी जमकर कड़ी होने को थी, चन्द्रमाका जन्म हुआ ही था कि उधर जलवृष्टि—महान् जलवृष्टि होने लगी—भीषण धारायें पूर्व निर्मित खड्डोंमें जलराशि उडेलने लगीं। इन समुद्र-निहित जलराशियों ने कई परिवर्तन उपस्थित किये जो देखे जा चुके हैं।

पानी वनना इसलिये प्रारम्भ हुआ क्योंकि वायुमण्डलमें हाइड्रोजन व आक्सीजन उचित मात्रामें मिल सके। उचित मात्रामें ही मिल सकना, अधिक मात्रामें न मिलने देनेका श्रेय पृथ्वीकी परिमित आकर्षणशक्ति को है। हाइड्रोजन एक वाहरी गैस है जो भ्रमण करते करते मार्गच्युत होकर हमारे वायुमण्डलकी सीमामें हमारी पृथ्वीकी 'आकर्षण-खैंच' द्वारा खिंच आती है। यह गैस जहां हितकर है वहां प्राणघातक भी है। वातावरणमें इसका आवश्यकतासे अधिक रुकना ठीक न था। जानस्टन स्टोनीका अनुमान है कि यदि

यह गैस वर्तमान मात्रासे थोड़ी ही और अधिक रुकी होती तो आज पृथ्वी जलती होती ! आगकी लपटें निकलती होतीं। हाइड्रोजनकी परिमित मात्रा में आना ही हमारे ग्रहके लिये आगामी परिवर्तनोंका मूल कारण हो गया। परिमित मात्रामें रोकना, कम या अधिक न रोकना काम था विशेष परिमाण-की गुरुत्वशक्ति का। यदि आकर्षणशक्ति उस परिमाणसे अधिक हुई होती तो अधिक हाइड्रोजन रुकी होती। गुरुत्वशक्तिका इस परिमाणमें होना पृथ्वीके वर्तमान भार वाली होनेपर आश्रित था। यदि पृथ्वीका तौल विस्तार-आकार आदि वर्तमान मात्रासे अधिक होता या वृहस्पति या शनिकी भांति हुआ होता तो इसकी भी आकर्षण शक्ति अधिक हुई होती—फल यह होता कि पृथ्वी भी अन्य ग्रहोंकी भांति जीवहीन हुई होती। इस समय न लेखक होता न लेख और न पाठक। सव घटनाकी मूलस्रोत एक घटना थी, **"पृथ्वीका विशेष मात्रा वाली उत्पन्न होना।"** विशेष मात्रावाली होनेके कारण, उसे विशेष परिमाणकी 'आकर्षण-खैंच' मिली, जिसने आवश्यक मात्रावाली हाइड्रोजनको रोका उसने अपने टर्नपर आक्सीजनसे मिलकर पानी उत्पन्न किया।

पानी तो वनता ही—कोई कारण न था कि उपर्युक्त घटनाएँ होती जातीं और अन्त में पानी निर्मित न हो पाता। यह कोई कौतूहलजनक वात न थी—कौतूहलजनक वात तो यह थी कि पानी वनना ठीक उसी समय प्रारम्भ हुआ जव **चन्द्रमा पृथ्वीसे अलग हो रहा था**—पृथ्वीमें गहरे खड्ड छोड़ रहा था। जल को टिकने के लिये धर्मशाला मिल गई। यदि समुद्र-गर्त तैयार न मिलते तो पानी सारी पृथ्वीमें मारा मारा फिरता। यह पानी इतना अधिक था कि सारी पृथ्वीको दो मीलकी गहराईमें डुवाये रखता (डाक्टर वैलेस के मतानुसार)। सोचनेकी वात है कि यदि पूरी पृथ्वी

दो मील गहरे समुद्र में डूबी होती तो जीवन समुद्र सीमा से निकलकर आगे न बढ़ पाता। न स्थली वृक्ष होते, न पशु और न पक्षी। समुद्र से भाप उठा करती और समुद्र में ही वरसा करती, पानी उतनाका उतना ही भरा रहता। सोखने या कम होने का अवसर न आता। उच्च श्रेणीके जीवोंका विकास न हो पाता। जहाँ पाठक वैठे हैं वहाँ मछली, कच्छप, घड़ियाल, अजगरादि युद्ध करते दृष्टिगोचर होते। चन्द्रमाका ऐसे समय—तरलावस्थाके अन्तमें—वनना जिससे कि समुद्र-खड्ड निर्मित हो जाय क्यों हुआ, इसका उत्तर अभी तक विज्ञानने नहीं ढूढ़ पाया है। किन्तु इतना मानना पड़ेगा कि पृथ्वी वाल वाल वच गई। यदि कहीं चन्द्रमाका निर्माण गैस अवस्थामें हो गया होता तो समुद्रोंका अस्तित्व न हो पाता, पानी सारे धरातलपर फैला-फैला फिरता आदि। सारांश यह कि पृथ्वीको जीवित ग्रह वना देने वाली मुख्य दो घट-नायें—एक तो उसका निश्चित मात्रा वाली होना, दूसरा चन्द्रमाका पृथ्वीसे उस समय अलग होना कि समुद्र वन सके। इन दो घटनाओंने आगे चलकर सहस्रों घटनाओंके लिये द्वार खोल दिया। चन्द्रमाने उत्पन्न होकर केवल समुद्र ही नहीं वनाये अपितु ढाई-ढाई मील ऊंचे ज्वार-भाटे उत्पन्न किये जिनकी वदौलत प्रायद्वीप, पर्वत व समुद्र सीमाओं का वंटवारा हुआ। दिन की लम्वाई वढ़ाने में भी ज्वार-भाटोंने ही काम दिया। सम्भव है अन्य ग्रहों व नक्षत्रों में उपर्युक्त दो प्रधान घटनायें न हो सकीं हों जिनके कारण आगे आने वाली घटनायें भी न घट सकी हों।

यदि हम इस धरा-निर्माण-कालमें उपस्थित होते तो आँखोंसे विचित्र दृश्य देखते, कानोंसे सुनाई देनेके लिये प्रचण्ड तूफ़ानी जल-प्रवाहके शैल-खण्डोंसे टकराने, धाराओंका ऊंचाईसे गिर कर भैरवसंगीत-सृजन करनेके अतिरिक्त कुछ न सुनते। चारों ओर क्रियायें हो रही थीं किन्तु सव स्वतः

हो रही थीं—मशीन चालू हो गई थी उसका आगे बढ़ते जाना स्वाभाविक था। सब काम प्रकृति द्वारा स्वयं एक के पश्चात् दूसरे होते चले जा रहे थे। चारों ओर चहल-पहल थी।

यह ठीक है कि चारों ओर चहल-पहल थी—समुद्र, धरातल व अन्तरिक्ष में दौड़ धूप थी, किन्तु यह चहल-पहल निर्जीव तत्वोंकी थी। जीवित प्राणियों या वनस्पतियोंकी क्रीडा कहीं भी प्रारम्भ न हुई थी। चट्टानें सूनी थीं। समुद्र जीवनहीन था। आकाश विहगशून्य था। अगले अध्यायमें देखेंगे कि जीवन सर्वप्रथम धरातल, आकाश और समुद्रमें कहां प्रारम्भ हुआ। यह भी देखेंगे कि जीवित प्राणियों की उत्पत्ति किससे हुई।

४

जीवन क्या है ?

इस प्रश्न पर विचार करनेके पूर्व कि जीवन सर्वप्रथम कहाँ प्रारम्भ हुआ यह विचार कर लेना अच्छा होगा कि जीवन क्या है और किन किन परिस्थि-तियों पर टिका है।

दार्शनिकों तथा कवियों आदि ने 'जीवन' शब्द का प्रयोग इतने गुम्फित ढंग से किया है कि उसका वास्तविक अर्थ समझ सकना दुरूह है। उनका लक्ष्य अदृश्यकी ओर संकेत करने का रहा है। जीवन एक संग्राम है जिसमें कभी विजय होती है कभी पराजय, जीवन अनित्य है, जीवन स्वप्न है आदि आदि धारणाओंके प्रचारसे वास्तविकता की ओर दृष्टि जा ही नहीं पाती।

हरवर्ट स्पेन्सरने एक बार कहा था—"Life is a continuous adjustment of internal relations with external relations" अर्थात् वाह्य सम्बन्धोंसे आन्तरिक सम्वन्धोंका अभिन्न समन्वय ही जीवन कहलाता है।' यहां पर 'जीवन' की तह तक पहुंचनेके लिये छटफटाहट है किन्तु सफलता नहीं दीखती।

अरस्तू द्वारा दी गई परिभाषा कुछ कुछ वास्तविकता के समीप पहुंचती हुई प्रतीत होती है। उनका कहना है,—"Life is the assemblage of the operations of nutrition, growth and destruction अर्थात् पौष्टिक पदार्थ, वृद्धि और ह्रास सम्बन्धी क्रिया-कलापोंका एकत्रीकरण ही जीवन है।

इन परिभाषाओंमें एक बातकी कमी है। वह यह कि क्रिया-कलापोंका तो ध्यान रखा गया है किन्तु जिस मन्दिरमें (शरीरमें) यह क्रियायें हुआ करती हैं उसका ध्यान नहीं रखा गया। जीवनका रहस्य शरीरमें छिपा है। शरीरसे मेरा तात्पर्य मानव-शरीरसे ही नहीं है अपितु समस्त जीवित पशु, पक्षी और वनस्पतिके शरीरसे है। यह शरीर वस्तुतः ऐसी जीवित मञ्जूषा है जिसमें जीवके अनजाने प्रतिक्षण अनेकों व्यापार हुआ करते हैं। निर्जीव पदार्थोंमें यह बात नहीं होती।

हममें से प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक समय जीवित व निर्जीव पदार्थ देखता है, पर यदि कोई पूछ बैठे कि दोनोंमें अन्तर क्या है तो बताना कठिन हो जायगा। क्योंकि जो बात अत्यन्त सरल दिखा करती है वास्तवमें वह उतनी सरल होती नहीं।

कहा जा सकता है कि जीवित प्राणी सोच विचार सकता है किन्तु यंत्र, मानव आदि मनन नहीं कर सकते, जो एक बार भर दिया गया है उसे ही सहस्रों बार पुनः दोहराते जायंगे। परन्तु यह आवश्यक नहीं कि सम्पूर्ण जीवित प्राणियोंमें सोचने विचारनेकी शक्ति होवे ही। सोचनेकी क्रिया सांसारिक वस्तुओंसे परिचय हो जाने पर प्रारम्भ होती है। साथ ही साथ भाषाका भी बड़ा हाथ रहता है। भाषाकी सहायतासे न केवल हम अपने मस्तिष्कमें वस्तुओंकी मूर्तियां स्पष्ट देखते हैं अपितु दूसरोंके मस्तिष्कमें भी उसी प्रकारके

चित्र अंकित कर देते हैं जैसे कि हमारेमें खिंच रहे हैं। नौकरसे कहा 'अलमारीसे पीली मोटी पुस्तक उठा लाओ' उसके मस्तिष्कमें 'अलमारी', 'पीली', 'मोटी' 'पुस्तक' के चित्र खिंच गये। इन चित्रोंके खिंच जानेमें क्यों देर न लगी ? कारण कि, वह भाषाका ठीक ठीक अर्थ जानता था और उन वस्तुओंसे भली भांति परिचित था जिनकी ओर संकेत किया गया था। अब उस बालककी कल्पना कीजिये जो गर्भमें है—क्या वह सोच विचार सकता है ? कदापि नहीं। न तो उसने किसी वस्तुसे परिचय प्राप्त किया है और न किसीका नाम ही सुना है—पेटके भीतर जागरणहीन निद्रा थी वस्तुओंको देखता तो कैसे ! फिर उनके विषयमें सोचना तो बहुत दूर रहा। भाषा सुनी न थी,जो कुछ शब्द सुनाई दिया करते थे सब माताको, ऐसा तो था नहीं कि जो माताको सुनाई दे। वह उसके कानों तक पहुँचे; माताको दिखाई दे उसकी भी आँखोंमें झूलने लगे आदि। इस प्रकारकी घटनायें शायद अभिमन्यु, शुकदेव और अष्टावक्रके युगमें हुआ करती थीं कि बालक गर्भकी चहारदीवारीके भीतर कई झिल्लियोंके पुर्तमें लिपटा रहने पर भी बाह्य संलापका आनन्द ले सके। अष्टावक्रजीने तो अशुद्ध वेदपाठ करनेवाले पूज्य पिताको पेटके भीतरसे टोक भी दिया था जिसके फलस्वरूप आठों अंग वक्र हो जानेका श्राप मिला। बाहरकी बातें भीतर और भीतरकी बातें बाहर सुनाई देना सम्भावनासे परे है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि मैं परम्परागत जातीय गुणोंकी अमर ज्योतिका पक्षपाती नहीं—हो सकता है कि माता-पिताके गुण प्रवृत्तियां आदि गर्भस्थ बालकके रक्तमें प्रवाहित हो रही हों, मस्तिष्कमें बीजरूपसे निहित हों जो आगे चलकर माता-पिता सदृश विकसित हो जायं ; किन्तु यह कि कान, आँख बन्द किये सिमटा हुआ पड़ा रहने वाला गर्भस्थ मांसपिण्ड बाहरकी बातें देख, सुन सकता है, निपट असंभव है। तात्पर्य यह कि सोचनेकी क्रिया बालकके गर्भावस्थामें प्रारम्भ नहीं होती फिर

भी उसे निर्जीव नहीं कहा जा सकता। यह कहना कि प्रत्येक जीवित प्राणी सोच विचार सकता है निर्मूल है। माना कि खुली हवामें उड़नेवाली या मधुर फल पर बैठनेवाली चिड़िया कुछ सोच रही है, किन्तु पके हुए अण्डेके भीतर पूर्ण हो चुकने वाला शिशु-पक्षी भी कुछ सोचता होगा कल्पनाके परे है। विचार उठा करते हैं,"मस्तिष्कमें अमीवा, स्पंज आदि कई निम्न कोटिके जीव ऐसे हैं जिनके मस्तिष्ककी कौन कहे रुधिर, मज्जा आदि कुछ भी नहीं ; फिर भी जीवित प्राणी हैं, उनका केवल काम है हाथ-पैरके फन्दोंको फैलाते, सिकोड़ते रहना जो कुछ दैवेच्छासे आ जाय हड़प लेना और शरीर स्थूल हो जाने पर आत्म-विभाजन कर लेना।" सजीव और निर्जीवका भेद सोचनेकी कसौटी पर नहीं कसा जा सकता। तव फिर किस पर कसा जा सकता है ?

सच्ची वात यह है कि सजीव पदार्थ अपनेसे इतर जड़ अथवा चैतन्य पदार्थोंको स्वयं खा सकता है, उनको भीतर ही भीतर पचाकर सारतत्व शरीर-पोपणके लिये वचा रखता है और सारहीन तत्व निकाल वाहर करता है। दूसरा लक्षण यह है उसका शरीर, शकल सूरतमें एक-सा रहने पर भी घटता वढ़ता रहता है।

इस उपर्युक्त सूत्ररूपिणी परिभाषामें समस्त जीवित जगत्‌की व्याख्या छिपी है। अमीवा स्पंजसे लेकर वृक्ष, पशु, पक्षी सवमें लागू हो सकती है। कोई ऐसा नहीं जो किसी न किसी प्रकारका भोजन ग्रहण न करता हो, पचाकर सारतत्व लेकर निस्सार तत्व न फेंक देता हो। पशु, पक्षी, वृक्षादि वढ़ा करते हैं किन्तु फिर भी वही रहते हैं जैसे पहले थे। वृक्षमें सोचनेकी मशीन मस्तिष्क भले ही न हो किन्तु उपर्युक्त क्रियायें अवश्य होती हैं—मट्टी, खाद, जल, लवण, क्षार, उष्णता, प्रकाश, कई प्रकारकी गैस आदि खाता है, उन पर रसायनिक क्रियायें करता अपने अनुकूल वनाता, निस्सारको निकाल, सार पदार्थ

द्वारा प्रत्येक अंग तक शक्ति पहुंचाता, पुनर्नवीन करता, जीर्ण-शीर्ण, मृत पत्तों, फूलों-फलोंको त्यागता, नये धारण करता हुआ बड़ा होता रहता है। शरीरके कोने कोने में नवीन रस व शक्ति पहुंचानेके लिये रसवाहिनी वह्लियोंका जाल विछा रहता है। कुछ ही दिन हुए एक वैज्ञानिकने ठीक लिखा था कि "जीवन के मूलभूत व सर्वप्रधान रहस्यको यह कहकर प्रकट किया जा सकता हैं कि यह एक प्रकारका **शक्ति-व्यापार** है, शक्तिका यातायात है। जीवित पदार्थों का मुख्य शारीरिक कार्य यही प्रतीत होता है कि 'शक्ति'का संग्रह और वितरण किया जाय जिससे रचनात्मक कार्य * किये जा सकें।"

तीसरा सवसे अधिक महत्वपूर्ण लक्षण यह है कि जीवित प्राणियोंमें अपनी प्रतिमूर्ति उत्पन्न करनेकी क्षमता होती है, संख्या-वृद्धिकी शक्ति पाई जाती है। यद्यपि सब जीवोंमें जनन-क्रिया एक प्रकारकी नहीं होती किन्तु किसी न किसी प्रकारकी होती अवश्य है—निम्न कोटिके जीवों—अमीवा, आदि में 'आत्म-विभाजन' की क्रिया होती है, इतर प्राणियों—पशु, पक्षियों आदिमें मैथुन की। मैथुनिक सृष्टिका विकास एक कोश द्वारा होता है। यह कोश वीर्यविन्दु या जीवनवीज देखनेमें नगण्य किन्तु अपरिमित शक्ति वाला होता है। इसमें विकसित होनेकी आश्चर्यजनक शक्ति छिपी रहती है। मातृगर्भके रासायनिक तरल पदार्थोंके सहयोगसे पनपता रहता है—वढ़ते वढ़ते इतना विकसित हो जाता है कि अपने जनकके रूप, रंग, आकार, गंध, प्रवृत्ति आदिकी सच्ची प्रतिमूर्ति वन जाता है। यह सव गुण जादू भरे कोशमें वचपन से ही वर्तमान रहते हैं। यहाँ तक कि आँखोंकी पुतलियोंका रंग, केश-वर्ण, चञ्चु, पंख, दन्त, नखकी आकृति आदिके वीज भी अणु रूपमें विद्यमान रहते हैं। इन कोशोंमें एक प्रकारका जीवित तरल द्रव्य जिसे प्रोटोप्लाजम कहते हैं

*प्रोफेसर एफ० जे० एलन रचित What is life? "जीवन क्या है।"

व्याप्त रहता है। यह जिन्दा लुआब ही सब पशु-पक्षियों और वृक्षोंका आधार है। यदि यह न हो तो जीवन समाप्त हो जाय। जीवन क्या है का सबसे ठीक उत्तर होगा "प्रोटोप्लाज्मकी दौड़ धूप।"

हक्सलेका कहना है कि समस्त जीवनके आधार प्रोटोप्लाज्ममें चार तत्वों-का सम्मिश्रण होता है। तीन तो गैसें (नाइट्रोजन, हाइड्रोजन, आक्सीजन) और चौथा धातु-रहित ठोस तत्व कारबन। इन चारोंमेंसे प्रत्येकमें पुनः कई प्रकारके रासायनिक मिश्रण छिपे रहते हैं। कारबन उन मिश्रणोंकी संख्या शेष तीन तत्वोंके मिश्रणोंसे कहीं अधिक होती है। इसीकी आश्चर्यकारी विभिन्नताओंके फल स्वरूप पाशविक अंगों—चर्म, श्रृङ्ग, केश, नख, मांसपेशी, धमनी आदिमें वही पूर्वोक्त चार तत्व पाये जाते हैं। इतना ही नहीं शाकाहारी, मांसाहारी दोनों प्रकारके पशुओंमें—तृण, पत्र चुगनेवाली गाय, हरिण, शशकों में तथा पशुभक्षक सिंहके अवयवोंमें चार तत्व पाये जाते हैं। आश्चर्यकी सीमा तो तब और नहीं रहती है जब हम देखते हैं वनस्पति जगतमें उत्पन्न होने वाली विभिन्न वस्तुओंमें—यहाँ तक कि विपरीत वस्तुओंमें भी चार तत्व पाये जाते हैं। भिन्न प्रकारके फल, शर्करायें, तैल, मोम, तम्बाकू, अफ़ीम, कुनैन, बैलाडोना, पेय पदार्थ जैसे चाय, काफ़ी, कोको सबमें ही यह चार तत्व पाये जाते हैं जिनसे हमारा शरीर निर्मित है।

F. J. Allen (एफ० जे० एलन) का मत है कि चारों तत्वोंके मेल से बननेवाला जीवित द्रव प्रोटोप्लाज्मका मुख्य तत्व—नाइट्रोजन है। शेष तीन उतने उल्लेखनीय नहीं जितना यह अकेला।

यदि सूक्ष्मरूपसे देखा जाय तो विदित होता है कि सम्पूर्ण पशु-जीवनका मूल स्तम्भ वनस्पतिजगत् है। जो पशु शाकाहारी हैं वे तो शाक-पात खाकर जीते ही हैं जो मांसाहारी हैं वह भी शाकाहारी पशुओंको खाकर ही जीवित

रह पाते हैं—उन शाकाहारियोंका जीवन वनस्पतिके विना संभव न होता—उनके न होने पर मांसाहारी पशु भी न हुए होते। इस प्रकार प्रकट या गुप्त किसी विधिसे पशुओंका जीवन वनस्पतिजगत् पर ही अवलम्वित है।

वनस्पतियोंमें प्रोटोप्लाज्मका सर्जन हुआ करता है। यही प्रोटोप्लाज्म पशुओंके शरीरमें जाकर संजीवनी धारा वना करता है। आइये देखें वृक्षोंमें प्रोटोप्लाज्म किस तरह वना करता है।

प्रायः लोग समझा करते हैं कि वृक्षका सारा काम जड़ें करती हैं और कोई अंग नहीं। यह असत्य है। सवसे अधिक काम उसकी पत्तियां और तने करते हैं। पेड़ोंमें तीन वस्तुओंकी प्रधानता रहती है, पानी, कारवन और मिट्टी-नुमा महीन राख। पौधेका शरीर मट्टी सदृश राखसे नहीं वना है अपितु कारवनसे वना है। यह कारवन वायु-सागरके कारवन डाइ औक्साइडसे पत्तियों द्वारा खींची जाती है। सच पूछा जाय तो वृक्षकी वास्तविक जड़ें हवामें होती हैं। पत्तियां ही वह जड़ें हैं। पत्तियां न होतीं तो वृक्ष वायुमण्डलसे कारवोनिक, तथा क्लोरोफाइलका शोषण न कर सकते। पत्तियोंमें एकत्रित हो जाने वाले क्लोरोफाइल, कारवोनिक ऐसिड तथा सूर्यरश्मि एक नवीन तत्वकी रचना करते हैं—आक्सीजन। कारवनको तो अपने शरीर-पोषणके लिये वचा रखा जाता है और आक्सीजनको अगणित रोमकूपों द्वारा वाहर निकाल दिया जाता है। वायु उस निर्वासित आक्सीजनको पुरापड़ोसमें विखेर देता है।

वृक्ष, लता, गुल्मादिकी पत्तियां जिन्हें हम आभूषण स्वरूप समझा करते हैं प्रकृतिकी महत्वपूर्ण प्रयोगशालायें हैं जिनमें अहर्निश रासायनिक क्रियायें हुआ करती हैं। नीचे आर्द्रताके समीप रहनेवाली जड़ें इन तक जल और क्षार पदार्थोंका घोल पहुंचाया करती हैं तव तक स्वयं एक वड़ा काम किया करती हैं—विशेष प्रकारकी कम्पमान 'ईथर लहरों' को फँसाया करती हैं

जिसकी सहायतासे ही कारबन और आक्सीजनका विभाजन शक्य हो पाता है। रेडयो वेवको फँसानेके निमित्त कमरोंमें जैसी वैज्ञानिक जाली तान देते हैं ठीक इसी प्रकारकी गुम्फित जाली इन पत्तियोंमें बनी होती है। इनमें, वातावरणके ईथर-कम्प स्वतः फंस जाया करते हैं। पत्तियोंमें पहलेसे ही क्लोरोफाइल, कारबोनिक ऐसिड गैस, जल, क्षार, अमोनिया, नाइट्रोजन, आक्साइड आदि एकत्रित रहते हैं—ईथर वेव रूपी सभापतिके आते ही कार्यवाही प्रारम्भ हो जाती है। निर्जीव तरल पदार्थोंके मिक्सचरमें गति और स्फूर्ति आ जाती है—यही जीवित द्रव **प्रोटोप्लाज्म** कहलाता है। इसमें जबतक क्लोरोफाइल नहीं मिलता तबतक सब रंगकी सूर्यरश्मियां प्रभाव डाल देती हैं किन्तु जब वह मिल जाता है तब सब वर्णकी रश्मियां प्रभाव नहीं डाल पातीं केवल विशेष जातिकी रक्त गुलाबी किरणें ही प्रभाव डाल पाती हैं। यही लाल किरणें कारबोनिक ऐसिडके तत्वोंका संग विच्छेद करती हैं। कारबनको अपने लिये और आक्सीजनको हमारे लिये दे देती हैं।

पत्तियोंमें तैयार हो होकर शाखाओं, जड़ों और तनेमें पहुंचा करता है—कलिका, पल्लव, पुष्प, फलोंमें भी यही क्रियायें काम करती हैं। इन्हींके परिणाम स्वरूप सार्थक अथवा निरर्थक पदार्थके रूपमें परिमल, गन्ध, वर्ण, तन्तु, काष्ठ, कंद, तैल, रस, सौरभ, मञ्जरी आदिका सृजन होता रहता है। इन सबका श्रेय जीवित द्रव प्रोटोप्लाज्मको है। हक्सलेने ठीक ही कहा है कि "प्रोटोप्लाज्म एक पदार्थ ही नहीं अपितु एक यंत्र है—ऐसा यंत्र जो सूर्यताप और सूर्यरश्मि द्वारा संचालित होता है तथा जो सहस्रों क्रिया-कलाप करता है।

५

जीवनके लिये आवश्यक परिस्थितियां

डाक्टर वैलेसके मतानुसार जीवन टिके रह सकनेके लिये निम्नाङ्कित पांच बातोंकी नितान्त आवश्यकता है।

(१) ऊष्णता-वितरण व्यवस्थित हो, ताकि तापमानकी सीमा सहसा घट बढ़ न जाय।

(२) सूर्यताप और सूर्यप्रकाशकी मात्रा उचित अनुपात वाली।

(३) जलका परिमाण विपुल ; किन्तु समस्त ग्रहमें समरूपसे वितरित।

(४) आवश्यकीय गैसों तथा यथेष्ट घनत्वयुक्त वायुमण्डल।

(५) रात्रि और दिवसका आगमन।

अच्छा हो कि हम लोग क्रमशः एक एक का विश्लेषण करके देखें।

(१) पहला है, **तापक्रमकी सीमित अवधि**। प्रायः देखा गया है कि जीवनका अस्तित्व पानी जमनेके प्वाइण्टसे लेकर १०८° डिग्री तक सम्भव होता है। इससे ऊपर उठने या नीचे गिरने पर जीवन असम्भव है ;

कारण कि केवल इन्हीं अंशोंके तापमानमें नाइट्रोजन तथा उसके पदार्थ उन तत्वोंको उचित मात्रामें स्थिर रख सकते हैं जिनका होना जीवनके लिये अत्यावश्यक है। प्रोटोप्लाज्मके चारों तत्वोंकी उपयुक्त मात्रा इन्हीं अंशोंमें एकत्रित रह पाती है। अधिक या कम होने पर वैलेन्स नहीं रहता।

एक निश्चित मात्राके तापक्रमकी महत्ता इसी बातसे लगाई जा सकती है कि प्रत्येक जीवको उसे बनाये रखनेके लिये अगणित प्रकट व गुप्त साधन करने पड़ते हैं। स्वस्थ मानव-रुधिरका साधारण तापक्रम ९८° डिग्री है। बाह्य जगत्का तापक्रम फ्रीजिंग प्वाइण्टसे चाहे कितना ही कम क्यों न हो जाय, किन्तु मानव अपने भीतरका तापक्रम घटने नहीं देता। अग्नि, ऊनी वस्त्र, धूप, भोजन आदिकी सहायतासे महाशीतके क्षणोंमें भी शरीरका तापक्रम ९८° बनाये रखता है। पशु-पक्षियोंके लिये उनकी केश-रचना सहायक हो जाती है। पक्षियोंके रुधिरमें और भी अधिक उष्णता होती है तभी तो भोजनको पागुर या चबाना नहीं पड़ता। तात्पर्य यह कि बाहरका तापमान चाहे जितना कम हो जाय किन्तु रुधिरका ताप कम नहीं होता। यदि कहीं वह भी कम हो जायगा जीवन रुक जायगा, प्राणी ठंढा पड़ जायगा। ऊपर हमने देखा था कि बाह्य-ताप चाहे जो बना रहे पर रुधिर ताप ९७°से कम और १०७°से अधिक न होना चाहिये। इसका अर्थ यह नहीं है कि बाहरका तापक्रम चाहे जब तक चाहे जितना कम या अधिक बना रहे, जीवन पर प्रभाव ही नहीं डालता। बाहरके तापक्रमका भीतरी तापसे गहरा सम्बन्ध है। यह बात नहीं है कि बाहरका ताप चाहे जितना घटता बढ़ता रहे भीतरी ताप प्रभावित ही न हो। एवरिष्टकी चढ़ाई पर जहाँ तक भीतरी ताप बाहरी तापसे मेल खाता रहा कोई हानि न हुई, पर जैसे ही विषमता असह्य हुई कि जीवन समाप्त। आस्ट्रेलिया और मध्यभारतका तापक्रम जिन दिनों ११५° या १२०° रहता

है उस समय भी मनुष्य किन्हीं न किन्हीं साधनों द्वारा रुधिरका ताप बढ़ने नहीं देता।

किसी भी कारणसे यदि रुधिरका ताप १०५° से अधिक हो जाय तो जीवन टिकना सन्देहजनक है। साधारण स्वास्थ्यसे छै सात डिग्री अधिक हो जाते ही घातक परिणाम उपस्थित हो जाते हैं। अतः निश्चित है कि जीवनकी यह परिस्थिति बड़ी नाजुक है।

पृथ्वीका कोई भी स्थान ऐसा नहीं जहां बारहों मास एक ही मात्राका तापमान रहता हो, एक ही ऋतु रहती हो। माना कि शीतप्रधान देशोंमें बहुधा फ्रीज़िंगप्वाइटसे नीचे उतर जाया करता है,किन्तु बारहो मास वही दशा नहीं रहती। ठीक उत्तरी ध्रुव या दक्षिणी ध्रुव अथवा जहां भी एक मिनटके लिये तापक्रम नीचा रहता है किसी प्रकारका पौधा या पशु-पक्षी नहीं पैदा होता।

यदि पूर्ण पृथ्वीका तापक्रम सदा फ्रीज़िंग प्वाइण्टसे नीचे रहा करता; कभी उठता हो नहीं; अथवा सदा खौलनेके अंशतक बना रहता कभी उतरता ही नहीं अथवा सदा खौलनेके अंश तक बना रहता कभी उतरता ही नहीं तो पृथ्वी निर्जीव ग्रह होती। यह कथन भ्रममूलक है कि उस समय और भांतिके जीव हुये होते, वे जीव ऐसे होते जो उस तापमें ही अपनेको जीवित रख सकते। निश्चित सीमाओंसे ऊपर जाने या नीचे उतरनेपर प्रोटोप्लाज्मके तत्व पारस्परिक अनुपातमें नहीं रह सकते हैं—जीवाणु निर्जीव हो जाते हैं।

(२) तापका उत्पादक सूर्य प्रकाश है। अन्य परिस्थितियोंके होते हुए भी इसके अभावमें जीवन सम्भव था, संदिग्ध है। ऊपरवाले विवरणमें देखा था कि पशु-पक्षियोंका जीवन वनस्पतिपर निर्भर है। वनस्पति पौधों आदिका जीवन सूर्यरश्मि पर आश्रित है। इसीकी सहायतासे पत्तियां, वायुमण्डलकी कारबोनिक एसिड खेंचा करती हैं।

सूर्यसे दूरी भी बड़े महत्वकी है। अत्यन्त निकट अथवा अत्यधिक दूर होनेपर तापक्रमके बढ़ने-घटनेकी गड़बड़ियां होने लगतीं। गणित द्वारा देखा गया है कि यदि सूर्यकी हमसे दूरी वर्तमानसे आधी हुई होती तो तापक्रम वर्तमान समयके चौगुना हुआ होता ; यदि दूरी दूनी होती तो ताप आधा मिलता होता। दोनों ही दशाओंमें जीवन असम्भव था—जीवन तो क्या प्रोटोप्लाज्म ही न बन पाता।

सौरमण्डलके मध्य हमारे ग्रहकी स्थिति बड़े अच्छे स्थान पर है। न तो सूर्यताप अत्यधिक आता है और न अत्यल्प कहा जाता कि हम लोग सौर-मण्डलके शीतोष्ण कटिबन्धमें हैं। जीवनकी तीसरी, किन्तु सर्व प्रधान आवश्य-कता है जल। समस्त भूमण्डलपर कोई प्राणी जल-शून्य नहीं है। पृथ्वीसे वृक्षोंकी जड़ें जल न सोखतीं तो प्रोटाप्लाज्म न बन पाता। प्रोटोप्लाज्ममें तरलता लानेका श्रेय जलको ही है। हमारे शरीरमें कई पदार्थ सम्मिलित हैं। इनमें अकेले जलका भाग कुलका तीन चौथाई है। शेष एक चौथाईमें अन्य पदार्थ हैं।

किसी भी ग्रहमें जीवन-विकासके लिये आवश्यक है कि उसमें जलकी पर्याप्त मात्रा समस्त परिधिपर सम रूपसे वितरित हो ताकि प्रत्येक स्थानपर मिल सके। यह काम समुद्रों का है। समुद्री गड्ढोंमें जलराशि सञ्चित रहती है। वाष्प बनकर उड़ती और दूर दूर स्थानोंको जहां जलकी कोई साम्भवना नहीं, पहुंचा करती और पानीका रूप धारण किया करती है।

जल एक और बड़ा काम करता है—तापक्रमको उचित सीमासे आगे पीछे न जाने देना।

जलराशियोंका सञ्चित कोश और वायु-सागर न हुए तो सूर्यरश्मियां जहां पड़तीं वहीं उष्णता होती—जहां सूर्य न होता वहां अत्यधिक नितान्त

शीत पड़ता। सूर्यके चले जानेपर समुद्र एवं वायुमण्डल ही ऐसे हैं जो उष्णता विखेरते रहते हैं।

समुद्रोंका प्रभाव दो रूपमें पड़ता है। एक तो निकटवर्ती वायुमण्डलको ताप देते समय और दूसरे दूरवर्ती स्थानोंको प्रभावित करते समय। समुद्रका गुण है शनैः-शनैः उष्ण होना और पर्याप्त मात्रामें सूर्यताप सञ्चित कर लेना ताकि सूर्यास्तके समय तक कई फ़ीटकी गहराई तक उष्ण हो जाय। जलके विपरीत वायुमण्डल शीघ्र उष्ण हो जाता है और शीघ्र उष्णता छोड़ देता है। सूर्यास्त होते ही वायुमण्डल तो शनैः-शनैः शीतल हो जाता है, किन्तु जल-निधि फिर भी महोष्णता विखेरना प्रारम्भ करता है—निकटवर्ती निचले वायु-सागरको गर्म बनाने लगता है। वैज्ञानिकोंने अनुसन्धान करके देखा है कि एक घनफीट पानीकी उष्णता ३००० घनफीट वायुको उतने ही अंशोंमें उष्ण कर देती है जितने अंशोंमें अपनेको शीतल। अर्थात् इधर वातावरण जितना उष्ण होता है उतना उधर समुद्र शीतल। एक घनफ़ीट पानीकी उष्णतासे तीन हज़ार घनफ़ीट वायु उष्ण बन जाती है। यही कारण है कि सागरों और महा-सागरोंकी जल-सतह धरामण्डलमें भरकर निचले वातावरणको पर्याप्त उष्ण बनानेमें सफल हो जाती है। प्रकृतिमें क्या ही विचित्र क्रीड़ायें हुआ करती हैं। सायं-काल हुआ नहीं कि वायुमण्डल शीतल होने लगा—किन्तु गम्भीर जलधि कब पीछा छोड़ सकता था, सूर्य गया तो वह सही। बेचारे वायुमण्डलको एक न एक उष्ण बनाये ही रखता है—एक ऊपरसे दूसरा नीचेकी ओरसे।

इतना दिया जानेपर भी बेचारा वायुमण्डल अकिञ्चनका अकिञ्चन ही रहता है। समुद्र द्वारा प्राप्त होनेवाले तापको स्थलगामिनी पवन-धारायें ले जाती हैं। उस समस्त क्षेत्रमें, जहां सूर्याभाव होता है, उष्णता वितरित कर देती हैं। स्वयं रिक्त हस्त,—निर्धनको निर्धन।

यदि समुद्र न होते तो रात्रि होते ही वायुमण्डलकी उष्णता निकल जाया करती, अर्द्ध रात्रिके पहले पहल तापमान बर्फ जमनेके बिन्दुसे भी गिर जाया करता। सूर्यकी अनुपस्थितिमें जलनिधि ही वातावरण और स्थलको उष्ण रखता है।

समुद्रका द्वितीय गुण था—दूरवर्ती स्थानोंको प्रभावित करना। किस प्रकार ? जल वृष्टि द्वारा। सभी जानते हैं कि स्थलसे जल तिगुनी मात्रामें अधिक विस्तृत है। इतनी अधिक मात्रामें होना, तथा एक स्थानपर सञ्चित होना भर पर्याप्त न था—समान रूपसे कोने-कोनेतक पहुँचनेकी आवश्यकता थी। समुद्र वाष्प आकाश मार्गसे होकर दूर-दूर भ्रमण करता तृषित धराके कण्ठकी प्यास बुझाकर जीवनको सम्भव बनाता है। सब स्थानपर इन आकाशीय नहरों द्वारा धरा-धान्यका सेचन न हुआ होता तो कहीं मरुस्थल दिखलाई पड़ते और कहीं ऊजड़, जीव-पशु-वृक्ष-विहीन प्रदेश। अब भी हैं। किन्तु तब और अधिक होते।

(३) समुद्रके पश्चात् अन्य आवश्यक पदार्थ है **वायुमण्डलका घनत्व**। हम सभी जानते हैं कि जीव अन्य सब अभावोंकी अवहेलना कर सकते हैं किन्तु वायु-अभाव की नहीं। केवल वायुमण्डल ही वाञ्छनीय नहीं है ; अपितु पर्याप्त घनत्ववाला वायुमण्डल वाञ्छनीय है। साधारणतः तो अन्य ग्रहों उप-ग्रहोंमें भी वायुमण्डल हैं। किन्तु वे नामचारको हैं। उनमें घनत्व अधिक नहीं।

घनत्व अधिक होनेसे सूर्यताप रुका रहता है। शीघ्र निकल नहीं भागता। सूर्यास्तके पश्चात् भी गर्मी कारागारमें बन्दिनी बनी रहती है। दूसरा लाभ घनत्वके कारण यह है कि उसमें विभिन्न गैसों आक्सीजन, कार-बोनिक एसिड गैस, सामुद्रिक वाष्प आदि की उपस्थिति सम्भव हो जाती है।

अभी कुछ ही देर पूर्व हमने देखा था कि दिनमें सूर्यसे एवं रात्रिमें समुद्रसे उष्णता लेकर धरातलमें फैलानेका काम यही करता है। यदि पर्याप्त घनत्व न होता तो वितरणका कार्य भी शक्य न हो सकता था। ध्रुवस्थलोंमें घनत्वके अभावके फल स्वरूप ही ताप नहीं टिकता। वहुत ऊंचाईपर जहांका घनत्व कम होता है ताप कम रहता है। और तो और; विषुवत रेखापर भी १८००० फ़ीटकी ऊंचाईपर हिम पड़ना प्रारम्भ हो जाता है कारण कि इस ऊंचाईका घनत्व समुद्रतलके घनत्वसे आधा रह जाता है।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि हमारे धरातलके निकटवाला वायुमण्डल वर्तमान समयसे आधे घनत्वका हुआ होता तो वर्फ ही वर्फ जमा होता—जीवन असम्भव था।

घनत्वके अतिरिक्त वायुमण्डलकी गैसें भी वड़े महत्त्व की हैं। इन गैसोंका होना उतना ही आवश्यक है जितना कि तापक्रम या घनत्वका। वृक्षोंका प्रथम भोज्य नाइट्रोजन है। किन्तु शुद्ध नाइट्रोजन पचा जाना वृक्षोंकी शक्तिसे परे है। अमोनियाकी सहायतासे यह कार्य हो पाता है यद्यपि वायुमें अमोनियाका दसवां भाग ही होता है किन्तु इसी अल्प मात्रासे ही सव काम चल जाते हैं।

वायुमण्डलकी अन्य आवश्यक गैस कारवोनिक एसिड है। इसका वायुसे अनुपात चार और दस सहस्रका होता है। प्रोटोप्लाज्म वनानेके लिये कार-वोनिक एसिड उतना ही आवश्यक है; जितना कि पशुओंके लिये वायु। कारवोनिक एसिड वृक्षोंके लिये अमृत है किन्तु पशु पक्षियोंके लिये विष। वहुत अच्छा हुआ जो इसकी मात्रा वायुके दस हज़ार पीछे चार ही है। इससे दुगुनी या तिगुनी हुई होती तो सारा वायुमण्डल विषाक्त नज़र आता। प्रारम्भमें वहुत काल तक सारा वातावरण जहरीला रहा था; किन्तु वृक्षोंने शनैः शनैः उसे शुद्ध किया तत्पश्चात् जलचरोंने धरा पर पदार्पण किया।

जब वृक्षजगत्ने पूर्ण रूपेण वायुका विष हर लिया तब पशुजगत्का श्रीगणेश हुआ। विष हरनेकी प्रणाली ऊपर कही जा चुकी है—आक्सीजन उत्पन्न कर वायुमण्डलमें बिखेरना। अतः अन्य गैसोंके साथ साथ आक्सीजन भी वायु-मण्डलकी प्रधान गैसोंमें से है। गैसोंके अतिरिक्त वायुमण्डलमें और भी कई वस्तुएं हैं इनमें तीन अधिक उल्लेखनीय हैं वाष्प, मेघ, रजकण।

वाष्प—किसी भी स्थानका वायुमण्डल देखा जाय तो जल-वाष्पकी हलकी-सी, झीनी-सी अदृश्य रूपसे तनी हुई मिलेगी। गिलासमें बर्फ घोलकर रक्खें तो बाहरी सतह पर नन्हीं नन्हीं बूंदे घिरने लगती हैं। यदि वायुमें जल-वाष्प न होती तो इतने शीघ्र पानीकी बूंदे कहांसे आ जातीं।

पत्तियां सूर्यतापसे झुलसने लगती हैं। उस समय जल-वाष्प ही उन्हें आर्द्र रखती और निर्जीव होनेसे बचाती है।

इस वाष्पका सबसे महत्वपूर्ण कार्य आमोनिया उत्पन्न करना है। इस जलवाष्पमें हाइड्रोजन उपस्थित रहता है—यह हाइड्रोजन जिस क्षण ही वायुमण्डलमें व्याप्त रहनेवाले नाइट्रोजनके सम्पर्कमें आता है उसी क्षण अमो-निया उत्पन्न हो जाता है। अमोनियाका जन्म हाइड्रोजन व नाइट्रोजनके सम्पर्कसे होता है। जल वाष्प न होता तो अमोनिया उत्पन्न न हो पाता। अमोनियाके अभावमें प्रोटोप्लाज्म—जीवित तरल पदार्थ-उत्पन्न न होता, उसके अभावमें हमारा सबका जीवन असम्भव था। जब तक जल-वाष्प उष्ण रहती है तबतक अदृश्य और रूप-रहित रहती है, किन्तु शीतल होते ही मेघरूपमें आ जाती है। यही मेघ पानी बरसाते हैं। समुद्रमण्डलपर धरातलकी अपेक्षा अल्पवृष्टि होती है; कारण कि सूर्यतापके प्रभावसे वाष्प बनकर पानी ऊपर उठता तो अवश्य है, ऊंचाई पर जाकर जलमें परिवर्तन भी हो जाता है किन्तु नीचे आकर जल समीपका उष्णताप पाकर फिर सूख जाता है, समुद्रकी अपेक्षा

धराखण्डका ताप कम होता है। निचले वातावरणमें शीतलता अधिक होती है, अतः जलवृष्टि सूखने नहीं पाती। मेघों द्वारा दिये गये जलसे असंख्य निर्झर झरने लगते हैं। सरिताओंका झुण्ड इठला इठलाकर प्रियतम सागरकी ओर द्रुतगतिसे भागने लगता है। जहां जहां जाता शुष्कधराको शीतल करता। उद्यान, उपवन, शस्य आदिको जगाता चलता है। पेड़ पौधोंसे शोभा तो बढ़ती ही है शीतलता भी बढ़ती, तापक्रम बढ़ने नहीं पाता। वनस्पतिके बाहुल्यसे वातावरणकी शुद्धि भी होने लगती है। इन सबसे बचा हुआ जल फिर वहीं समुद्रमें पहुंच जाता है जहांसे चला था।

इस चक्रकी गति कभी रुकती नहीं। प्रतिक्षण पहिया घूमा करती है। हमें तब और भी अधिक आश्चर्य होता है जब देखते हैं कि इस दुर्वह चक्र का भार रज-कणके दुबले कंधों पर अवलम्बित होता है।

मेघ और जलवृष्टिका एक मात्र आधार स्तम्भ वायुमण्डलान्तर्गत भ्रमण करनेवाले धूल परमाणुपर हैं। पचास वर्ष पहले वैज्ञानिकोंको इस कथन पर सन्देह था कि धूलकणों पर ही शीतलीभूत वाष्प आसन जमाती है। अतः उन्होंने प्रयोग किये और सत्यताका प्रमाण पाया। कुछ प्रयोग इस प्रकार थे—दो कांचके पात्रोंमें अलग अलग प्रकारकी वायु भर दी। एकमें साधारण वायु थी दूसरेमें रुईसे छनी हुई। इस वायुमें रजकण आदि किसी प्रकारके परमाणु न थे। दोनों बर्तनोंकी तहमें थोड़ा थोड़ा पानी भी था। पानी इतना गर्म किया गया कि वाष्प बनने लगी। जब तक भाप बनती रही दोनों बर्तन एक प्रकार बने रहे, किन्तु जैसे ही उसमें शीतलता पहुंचाई गई कि बिना छनी वायुवाले पात्रमें धूम्र रेखायें लहराने लगीं, पर छनी हुई वायुवाला पात्र अविकृत बना रहा, उसमें किसी प्रकारका कुहरा धुंआ आदि न दिखाई दिया। रजकण थे ही नहीं, शीतलोन्मुख वाष्प बैठती तो किसकी पीठ पर! इसी प्रकारके

और भी कई प्रयोगों द्वारा देखा गया तो प्रमाणित हो गया कि रजकणों पर ही ठंडी वाष्प टिकती है। अतः प्रचुर वर्षाके लिये आवश्यक है, **'वायु-मण्डलमें रजकण विपुल परिमाणमें हों।**

धरातलके निकटवर्ती अखिल वायुमण्डलमें रजकण पाये जाते हैं। ऊंचेसे ऊंचे पहाड़ोंकी चोटियों पर न होते तो वहां मेघ उठते न प्रतीत होते। अनुमानतः तीस पैंतीस मील ऊंचाई तक इनकी पहुंच है।

देखनेमें तो *धूलिकण नगण्य विदित होते हैं पर हैं बड़े कामके।* अभी एक महत्वपूर्ण तथ्य कहा जा चुका है कि शीतलीभूत वाष्प इन्हींके कंधोंपर बैठकर निराकारसे साकार रूप धारण करता है। दूसरा आश्चर्यकारी तथ्य यह है कि ताप व प्रकाश भी इन्हींके कन्धोंपर बैठकर दूर दूर घूमा करता है। अर्थ अभी पूर्ण स्पष्ट नहीं हुआ। इस प्रकार कहना ठीक होगा—उषाकाल, सन्ध्या काल, ग्रहण काल आदिमें जब सूर्य उपस्थित नहीं होता इन्हींके कारण उजेला बना रहता है। यदि यह न होते तो मध्यान्हमें भी आकाश कृष्ण वर्णका हुआ होता और नक्षत्र दिखाई दिया करते। जिस ओर सूर्यकी किरणोंका लक्ष्य होता उस ओर तो अवश्य प्रकाश रहता। कमरेके भीतर या जहां किरणोंकी पहुंच न होती वहां सूचीभेद्य अन्धकार तथा महाशीत हुआ होता क्योंकि प्रकाश और तापकी सूक्ष्म मञ्जूषाएं—रजकणिकाएं थीं ही नहीं। वायुप्रकाश को प्रतिबिम्बित न कर पाता क्योंकि स्वयं रूपहीन है। धूलिकण स्वयं प्रकाशित होते, प्रकाशकी गठरी सर पर रखकर अप्रकाशित स्थानोंकी ओर भागते वहांके कणोंको प्रतिबिम्बित करते और महा अन्धकार होनेसे बचाते हैं। इसी प्रकार एक नहीं कोटि-कोटि रजकणोंकी सेना उजेलेसे अन्धेरे और अन्धेरेसे उजेलेमें दौड़ा करती है। इस तथ्यको भी पचास वर्ष पूर्वके वैज्ञानिक पूर्ण सत्य न मानते थे। किन्तु कई प्रकारके प्रयोग करने पर मान गये। उसी

प्रकारके दो खोखले बेलन-नुमा पात्र जिनमेंसे एकमें छनी हुई रज-रहित वायु और दूसरेमें बिना छनी रज-युक्त वायु लेकर उनसे प्रकाश फेंक दिया। छनी हुई वायुवाले बेलनमें पूर्ण अन्धकार था किन्तु बिना छनी वायुवाला बेलन प्रकाशित था, चमक रहा था।

कहा जा चुका है कि वायुमण्डल रात्रि होते ही जब शीतल हो चलता है तब समुद्र द्वारा उष्ण किया जाता है। "समुद्र वायुमण्डलको उष्ण कर देता है" का क्या अर्थ हुआ, वायुमण्डलके किस पदार्थको उष्ण कर देता है? इसी रज संसारको। पहले समुद्र-सतहके निकटवर्ती रजसमुदाय उष्ण हो जाते हैं, वे भागते रहते हैं और उनके सम्पर्कमें आने वाले अन्य समुदाय भी उष्ण होते जाते हैं। मरुभूमिमें अधिक उष्णता व अधिक शीत पड़नेके प्रधान कारण भी वहांके रजकण ही होते हैं। इससे यह निष्कर्ष निकला कि सूर्यकी अनुपस्थितिमें तापमानको गिरनेसे बचानेका तथा महाशीत न पड़ने देनेका सारा श्रेय रजकणोंको है। यदि यह न होते तो उष्णता-वितरण समरूपसे न हो पाता।

दूसरा पहलू उष्णता रोकनेका है। यह पहले पहलूसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। यदि वायुमण्डलमें धूलकण न होते तो सूर्यताप साराका सारा पृथ्वीसे निकल भागा करता—उसे मार्गमें रोकनेवाला कोई न होता। धूलकण ही उसके मार्गका रोड़ा बनकर तीव्रता रोक लेते हैं। सूर्यके भीषण तापकी पूर्ण मात्राको भी पृथ्वी तक आनेसे रोकते हैं। इससे पृथ्वी झुलसने नहीं पाती आये हुये सूर्यतापको निकलने नहीं देते। यदि वायुमण्डलमें रजकण नाममात्र को भी न होते तो अपरिमित सूर्यताप धरातल तक चला आता—अत्यधिक जल वाष्प बन जाता यहांकी भूमि सूखी उजाड़ जलरहित हो जाती—पत्तियां जल जातीं। पानी तो वाष्प बनता ही, वर्षा किस रूपमें होती कल्पनातीत है। इतना तो निश्चित है कि मेघों द्वारा न होती क्योंकि रजसमूह थे ही नहीं,

सम्भव है ऊंचे-ऊंचे पर्वत शीघ्र शीतल हो जाते। समुद्र-वाष्प उन्हींसे टकराकर विना मेघ मूसलाधार पानी वरसाया करती। वहुत संभव है, सूर्याभावमें टैम्परेचर इतना गिर जाया करता कि वाष्पका पानी भी न वनता। सीधा हिमराशि वन जाता। ठीक ठीक कल्पना कर सकना कठिन है, किन्तु इतना ध्रुव सत्य है कि पशु और वृक्षादि जीवन सम्भव न था।

रूपवान् धूलकण रूपरहित वायुसे कहीं अधिक स्थूल और वोझिल है। वायुके गतिमान होनेके कारण ही धूलकण अन्तरिक्षमें टिके रहते हैं, घूमते रहते हैं। यदि एक मिनटके लिये सारा वायुमण्डल गतिहीन और स्तव्ध हो जाय तो सम्पूर्ण धूलिकण नीचे आ गिरें। रजकण हवाके पुछल्गे हैं। जिस ओर हवा चलती है उसी ओर यह भी दौड़ते हैं—कभी आंधी, कभी तूफ़ान, कभी ववंडर, कभी पूर्व पश्चिम या उत्तरकी ओर तथा कभी ऊपरसे नीचे और नीचेसे ऊपर। वायुमें गति लाने वाला तथा इन घटनाओंका सूत्रधार सूर्य है। धरातल सव स्थानों पर वनस्पति वाला अथवा मैदानी अथवा जलयुक्त नहीं है—एकसा नहीं है भिन्न भिन्न प्रकारका है। पर्वत, रेगिस्तान, काली मिट्टीकी सतह सूर्यतापसे शीघ्र उष्ण हो जाती है—अन्य वनस्पतियुक्त स्थानों की भूमि उष्ण नहीं होती, सरिता सरोवरोंकी सतहें और भी शीतल रहा करती हैं। इस प्रकार तापमें समानता न होनेके कारण ही वायुगतिमें भिन्नता, वक्रता, अव्यवस्था आदि आ जाती हैं। सूर्यरश्मियां तो पृथ्वीकी एक पेटी पर एक समान ही पड़ी रहती हैं; किन्तु धरातलकी वनावटवश भिन्नता हो जाती है। वायुगतिमें भिन्नता आने पर दो विपरीत दिशाओंमें भागनेवाली रजराशियां आपसमें टकराती हैं। इनके भागने व टकरानेसे विद्युत धाराओं की उत्पत्ति होती है। प्रत्येक कण कुछ न कुछ मात्रामें विद्युतशक्ति उत्पन्न करता है। वायुमण्डलमें अगणित परिमाणु भरे पड़े हैं। इनसे भी सूक्ष्म

पदार्थ जो विना यंत्र दिखाई नहीं देते —जैसे अणु, इलैक्टन, प्रोटोन, न्यूक्लीज़ हैं। यह संख्यामें रजकणोंसे असंख्यगुना अधिक हैं। इन सबके लिये वर्तमान समयमें वैज्ञानिक लोग बड़ी-बड़ी खोज कर रहे हैं। उनके दौड़ने पर रेखामार्गोंका चित्र लिया जाता है और देखा जाता है कि कितनी विद्युतशक्ति उत्पन्न करता है। जो हो, वायुमण्डलमें पाई जाने वाली वस्तुओंमें (रजकण जलवाष्प, गैस आदि) में विद्युत भी एक है और मुख्य है। जीवन-उत्पत्ति में इसका भी हाथ है। पत्तियां अपने जालमें इसे फंसा लेती हैं और इसीकी सहायतासे प्रोटोप्लाज्म वना करता है।

६

दिन-रात्रिका क्रमिक आवागमन
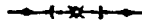
जीवनके लिये दिन और रातकी कम महत्वपूर्ण आवश्यकता नहीं हैं। दिवस रात्रिके आवागमनको इस प्रकार भी कह सकते हैं कि ग्रह या पिण्ड अपनी धुरी पर घूमता रहता है चन्द्रमा या बुधकी भांति अचल नहीं हैं यदि दिन ही दिन हुआ होता—रात्रिका नाममात्र न होता तब कई आपत्तियां आ उपस्थित होतीं। रात्रि आनेसे होता यह है कि दिनभरका ताप जो अधिक मात्रामें संचित हो जाता है निकल जाता है; केवल उतना ही बच रहता है जितनेसे हानि न हो। यदि रात्रि न होती तो दिनका ताप बढ़ता ही रहता कम न होता। ऐसी परिस्थितिमें जीवनका पनपना कठिन ही नहीं असम्भव था।

दूसरी समस्या है दिन और रात की लम्बाई। यदि सौ घण्टेका दिन तथा सौ घण्टेकी रात हुई होती तो दिनमें पृथ्वी इतनी उष्ण हो जाती कि पानी खौलने लगता। रात्रिके प्रथम दस-पन्द्रह घण्टोंमें सारा ताप निकल जाता,

शेष घण्टोंमें वायुमण्डल इतना शीतल हो जाया करता कि सम्पूर्ण पृथ्वी हिमाच्छादित रहा करती, पानी तरलावस्थामें न आ पाता, वनस्पतिकी पत्तियाँ प्रत्येक रात्रिको इतनी झुलस जाया करतीं कि दिनके सौ घण्टोंमें पुनः अंकुरित न हो पातीं। सच तो यह है कि किसी प्रकारकी वनस्पति सम्भव न होती। हमारा रात्रि-दिवसका वर्तमान विधान—अर्थात् लगभग बारह घण्टेका दिन और उतने की ही रात्रि, अति सुविधाजनक है। रात्रिके प्रथमार्द्ध तक समुद्र आदिसे उष्णता मिलती ही रहती है। बारह बजेसे चार बजे तक कुछ शीतलताका प्रचार होता है कि तब तक सूर्यताप आ धमकता है और धरातलको महाशीतसे बचा लेता है। ध्रुवप्रदेशोंको लेकर देखें तो पता चलेगा कि वहां प्रायः छः मासका दिन और छः मासकी रात्रि होती है। फिर भी प्राणी पाये जाते हैं, क्यों? इसका कारण यह है कि जिन प्राणियों, जीव-जन्तुओंको हम आज वहां पाते हैं ये वहीं विकसित न हुए थे, बल्कि मध्य भूमण्डलसे जाकर बस गये हैं तथा वैज्ञानिक साधनोंके बल पर जीवन-यापन करते हैं। यदि समस्त भूमण्डल पर छः मासका दिन और छः मासकी रात हुई होती तो जीवनका विकास ही न होता, वैज्ञानिक साधनों द्वारा जीनेकी कौन कहे।

इस प्रकार हमने देखा कि जीवनकी आवश्यक परिस्थितियां कौन हैं। उष्णता-वितरणकी व्यवस्था समुचित व नियमित होना, तापमानकी सीमायें निश्चित अवधिसे ऊपर नीचे न होना, सूर्यताप और सूर्यप्रकाश की मात्रा आवश्यकतासे कम या अधिक न मिलना, जलपरिमाण पर्याप्त मात्रामें, किन्तु अखिल गृहतल पर समरूपसे वितरित होना, वायुमण्डलमें जीवनोपयोगी गैसों, यथेष्ट घनत्व, रजकण और विद्युत्प्रवाहका उपस्थित होना। और रात्रि-दिवसका तात्पर्यसे आना जाना इत्यादि ऐसी आवश्यकतायें हैं कि एक की भी न्यूनतासे सारे चक्र में धक्का लगनेकी आशंका थी।

मानव-प्रादुर्भावसे लेकर आज तक इस बातका पूर्ण प्रमाण नहीं मिल सका कि पृथ्वीको छोड़कर अन्य किस सौभाग्यशाली पिण्डमें उपर्युक्त सम्पूर्ण परिस्थितियां उचित मात्रामें प्रस्तुत हैं। श्रेष्ठातिश्रेष्ठ यंत्रोंकी सहायतासे निकटतम उपग्रहों और ग्रहोंका कुछ अध्ययन किया जा सका है, दूरातिदूरस्थित पिण्डोंका वह भी नहीं हो सका है। देखें कब मनुष्य इन अमर चक्षुओंकी सत्यता खोज पाता है।

निकटवर्ती उपग्रहों और ग्रहोंका सूक्ष्म उल्लेख अनुपयुक्त न होगा। अतः देखें किन किन ग्रहोंमें उपर्युक्त परिस्थितियां पाई जाती हैं और किस मात्रा तक।

सबसे निकट चन्द्रमा है इसीका अध्ययन विशाल रूपसे हो चुका है। डाक्टर जी० जान्स्टन स्टोने जो चन्द्रमाके विशेषज्ञ हैं, कहते हैं, "चन्द्रमा अपने वायुमण्डलमें कारबोनिक ऐसिड जैसी बोझिल गैसको भी नहीं रोक सकता, हलकी गैसोंका तो कहना ही क्या। आक्सीजन, नाइट्रोजन, जलवाप्पका एक अणु भी नहीं, कारण केवल यह है कि चन्द्रमाकी मात्रा (तौल, बोझादि) बहुत कम होनेसे तदुत्पन्न गुरुत्वशक्ति भी न्यून है।" वैज्ञानिकोंका विश्वास है कि ब्रह्माण्डके अनन्त विस्तारमें गैसें पर्याप्त मात्रामें विद्यमान हैं। यदि ऐसा है तो ये किसी भी छोटेसे छोटे पिण्ड द्वारा आकर्षित की जा सकती हैं—चाहे अल्प मात्रामें ही सही। इस नियमानुसार चन्द्रमाको भी आकर्षित करना चाहिये; किन्तु नहीं करता। कारण यह है कि इसने अपनी धुरी पर घूमना छोड़ दिया है—सूर्यके सम्मुख रहनेवाला भाग सदैव तपता रहता है। चन्द्रमाका धरातल सदा तपते रहनेके कारण गैसोंको सुखाकर उड़ा देता है। गैसें काफूर हो जाती हैं। कुछ वर्ष पूर्व लोगोंका विश्वास था कि चन्द्रमा एक समय जीवित पिण्ड था, वहां भी जीवन था, मानव था

आदि। किन्तु अब इस कथन पर सन्देह किया जाने लगा है। अन्य उपग्रहों का पता नहीं चल सका।

ग्रहोंमें सूर्यके सबसे निकट ग्रह बुध है। इसका आकार और भी छोटा है, अतः गैसोंको उड़ जानेसे रोक नहीं सकता। निश्चित होगया है कि इसके पास वायुमण्डल नहीं, रात्रि-दिवसकी शृङ्खला नहीं, अतः जीवनकी कोई संभावना नहीं।

दूसरा ग्रह शुक्र है। इसमें दिन-रात्रिकी शृङ्खला तो है, किन्तु लम्बी है। हमारे बीस दिनोंके बराबर वहांका एक दिन है। ताप भी कुछ उष्ण सा है। इसके पास वातावरण होनेके पुष्ट प्रमाण मिल चुके हैं। ऊपरी वायुमण्डलमें आक्सीजन नहीं है सम्भवतः निचले भागमें है किन्तु उसे विशुद्ध करनेवाले वृक्षोंका अभाव है। अतः जीवनकी आशा नहीं।

इसके पश्चात् हमारी पृथ्वी है। इसकी परिस्थितियां कही जा चुकी हैं।

तब मंगलका नम्बर आता है। बस, इसी ग्रहमें सबसे अधिक परिस्थितियां पाई जाती हैं। इसका वायुमण्डल पृथ्वीके वायुमण्डलसे कुछ ही कम घना। कई बार उसमें मेघ देखे गये हैं। सूर्यताप भी लगभग उतनी ही मात्रामें पहुंचता है, वायुमण्डलमें पाई जाने वाली गैसें, आक्सीजन, जलवाष्पादि पाये जाते हैं। रात्रिदिवसका क्रम भी है और वह पृथ्वीके क्रमसे असाधारण रूपमें मिलता है। २४ घं० ३७ मि० ५९ से० का दिन-रात होता है। किन्तु एक बात नहीं मिलती। मंगल ग्रहकी मात्रा पृथ्वीसे बहुत कम है। उसका व्यास केवल ४२१५ मील है, जब कि पृथ्वीका ८,००० मील। इस कारण उसकी गुरुत्वशक्ति पृथ्वीसे कम है। कितनी कम है, इसका अनुमान इससे लग जायगा कि पृथ्वी पर जिस वस्तुकी तौल १०० सेर होगी वह मंगल पर २८ सेर होगी। मंगलग्रहकी रातें बड़ी ठंढी होती हैं। कभी कभी कई

फ़ीट तक तुषार जम जाता है, काले धब्बे दीख पड़ते हैं। इनके विषयमें सोचा जाता है कि सघन वनस्पति है। वातावरणमें आक्सीजनकी उपस्थिति प्रमाणित करती है कि वनस्पति हैं क्योंकि विना वनस्पतिके उसे कौन शुद्ध कर सकता है। इसी प्रकार नहरें होनेकी भी धारणा है। इतना होने पर भी अभीतक ठीक ठीक निश्चित नहीं हो पाया कि वहां जीवन है या नहीं।

प्रसन्नताकी वात है कि मंगलग्रह पिछली जुलाई-अगस्तको पृथ्वीके अतिथि होने आये थे। इनकी दूरी वहुत कम रह गई थी—केवल साढ़े तीन करोड़ मील। संसार भरके नक्षत्र-विद्यार्थी विशेषकर मंगल ग्रहके जिज्ञासुओंने उन दिनों फोटो लिये होंगे। अध्ययन किये होंगे। इस कार्यका भार डाक्टर वाटरफील्ड पर सौंपा गया था। देखें निकट भविष्यमें क्या रिपोर्ट निकलती है।

मंगलके पश्चात् वृहस्पति आता है। दिन-रात ९ घंटा ५३ मिनटके। जैफेका कहना है कि वृहस्पति लौह धातुका है, जो वर्फसे ढका है। इसका वातावरण महा शीतल गैसका है उसमें उष्णता वहुत कम है, जीवनकी आशा नहीं।

शनि, यूरेनस, नेपच्यून तथा प्लूटो सूर्यसे वहुत दूर होनेके कारण सदैव हिमाच्छादित रहते हैं, और उनके वातावरणमें जीवनोपयोगी गैसें नहीं। अतः प्राणी-अस्तित्व अनिश्चित है।

इन ग्रहोंका ही जव पूरा निश्चय नहीं हो पाया, तव नक्षत्रोंकी चर्चा करना व्यर्थ होगा।

७

सृष्टिके विकास का सिद्धान्त

विश्वसृष्टि, जीव-रचना, आदिके विषयमें दो ही मुख्य उपपत्तियां हो सकती हैं। एक तो यह कि जैसा आज देखते हैं वैसी ही आदिकालसे चली आई है। दूसरी यह कि इन असंख्य पशुओं व पौधोंका प्रस्फुटन कुछ इने-गिने पशुओं व पौधोंसे हुआ।

दूसरी उपपत्तिको विकासवाद कहते हैं। वर्त्तमान वैज्ञानिक युगमें इसीकी धूम है। जैसे-जैसे हमारा ज्ञान बढ़ता जाता है विकासवादके प्रमाण मिलते जाते हैं। प्रथम उपपत्ति अर्थात् 'जीव-सृष्टिमें आरम्भसे लेकर आज तक एक भी फेर-बदल या परिवर्तनन हीं हुआ" धीरे धीरे निम्न श्रेणी और कट्टर-पन्थियों तक ही सीमित होती जारही है। दूसरी उपपत्ति, विचारशील और मनीषी व्यक्तियोंकी मनोरंजन-सामग्री होती जारही है। उन्हें दिनोंदिन विश्वास होता जारहा है कि सृष्टिमें अनवरत गतिसे परिवर्तन होता आया है आज जो नाना विधिकी वनस्पति और प्राणी देख पड़ते हैं उनके पूर्वज धरतीकी

उत्पत्तिके समय ठीक ऐसे ही न थे। उस समय उत्पन्न होनेवाले जीव-जन्तु अत्यन्त सादा और सूक्ष्म थे। तदनन्तर, ज्यों ज्यों समय बीतता गया उनमें शनैः शनैः कुछ-कुछ भिन्नता आती गई। कालान्तरमें इनसे कुछ निराले और ऊँचे दर्जेके प्राणियोंका आविर्भाव हुआ। इसी प्रकार परिवर्तन, परिवर्द्धन, संशोधनका विशाल चक्र मन्दगतिसे आजतक घूमता आया। इस भ्रमणशील पहिया-के पदार्थोंका अध्ययन करना ही हमारा वास्तविक ध्येय है।

विकासवादकी उत्पत्ति पढ़नेपर शङ्का उत्पन्न होती है कि यदि वर्तमान समयमें दीख पड़नेवाले पशु व वृक्षोंका प्रादुर्भाव कुछ इने गिने सरल सूक्ष्म पशु, वृक्षोंसे हुआ,तो इनकी बनावटमें भिन्नता और परिवर्तन किस कारण हुई। सब जीव एक ही आकृति,आकार, वर्णके क्यों न हुए? एक ऊंटकी भांति लम्बी बेतुकी गरदनवाला और दूसरा हाथीकी भांति बेतुकी लम्बी नाकवाला क्यों हुआ! एक हिरनकी भांति लम्बे सींगवाला दूसरा ऋक्षकी भांति बिना सींगवाला क्यों हुआ? आदि। विपरीत दीख पड़नेवाले जन्तुओंका मूल स्रोत एक होना सुनकर उपर्युक्त शङ्कायें उठ खड़ी होना स्वाभाविक ही है। इन शङ्काओंका सफल समाधान कर लेना ही समस्याको सुलझा लेनेके बराबर होगा।

सबसे प्रथम इन शङ्काओंका उत्तर दिया था—लेमार्कने। उसका कहना है, प्राणीमें अवयवोंका परिवर्तन उनके उपयोग और अनुपयोगपर निर्भर है। जो अङ्ग मुहुर्मुहुः प्रयुक्त होते रहते हैं वे मांसल,पुष्ट, शक्तिवान तथा दीर्घ हो जाते हैं और जिनका प्रयोग नहीं होता वे क्षीण, ह्रस्व, शक्ति-हीन और अल्प होते रहते हैं, यहां तक कि एक समय वह आता है कि अन्तिम पीढ़ीमें लुप्त हो जाते हैं। अङ्गोंका सतत प्रयोग होना न होना भौगोलिक परिस्थितियों तथा उन परिस्थितियोंपर जिनके मध्य प्राणी जीवन व्यतीत करता है निर्भर है। अतः परिस्थितियोंके परिवर्तनसे ही अङ्गोंमें परिवर्तन उपस्थित होता है।

जिराफका चित्र दिया गया है। लेमार्कका कहना है कि यह प्रारम्भमें इतनी लम्वी न थी जितनी कि आज है परिस्थितिवश इसे कई पीढ़ियोंतक वृक्षकी ऊंची शाखाओंकी पत्तियां खानी पड़ीं। गरदनके मांसल रग वढ़ती गईं। वर्षों तक घन चलानेवाले लुहारका भुजदण्ड पुष्ट मांसल हो जाना स्वाभाविक ही है। जिराफकी गरदन भी अज्ञात रूपसे पीढ़ी-दर-पीढ़ी वढ़ती गई और आज इतनी वड़ी हो गई। यह तो हुआ अवयवके प्रयोगका महत्त्व, दूसरी ओर ऐसे भी उदाहरण हैं कि जिन अङ्गोंसे काम नहीं लिया जाता वे विलीन अथवा शक्ति-रहित हो जाते हैं। जो जीव अन्धकारमें रहने लगते हैं उनकी आखें शनैः शनैः छोटी और शक्तिहीन होती जाती हैं। यहां तक एक समय आता है कि सर्वथा लुप्त हो जाती हैं।

इस सिद्धान्तका यह अनुमान है कि वैयक्तिक अन्तर अगली पीढ़ीमें भी उतर आता है, विवादग्रस्त है। सब जीवशास्त्रवेत्ता इससे सहमत नहीं हैं। घन चलानेवाले लुहारके भुजदण्ड पुष्ट हो सकते हैं पर उसके लड़केके भुजदण्ड भी उसी प्रकार पुष्ट होंगे, संदिग्ध है। कई पीढ़ीतक चूहोंकी पूंछ काटकर सन्तानोत्पत्ति कराई गई किन्तु अभाग्यवश अन्ततक पुच्छ रहित चूहे उत्पन्न न हुए। तात्पर्य यह कि लेमार्कका :सिद्धान्त सर्वमान्य नहीं है।

एक मत और है जो आज सर्वमान्य है। इसे Natural selection अर्थात् 'प्राकृतिक चुनाव' कहते हैं। इसके विधाता थे चार्ल्स डार्विन।

यूरोपमें, अट्ठारहवीं शताब्दीके अन्तमें राजनैतिक सिद्धान्तोंकी वड़ी धूम थी। फ्रांसकी राज्यक्राति (फ्रेञ्च रिवोल्यूशन) तथा अमेरिकन स्वतन्त्रताकी घोषणाने मनुष्योंके हृदयमें 'मानव-अधिकार' 'नैसर्गिक-न्याय' इत्यादिके नारे लगाने प्रारम्भ कर दिये थे। कई दार्शनिकोंने विज्ञप्ति निकालना प्रारम्भ कर दिया था कि सब मानवोंके लिये पूर्ण स्वतन्त्रता और समानताका दिन शीघ्र

उदय होनेवाला है। भारतमें भी आज इसी प्रकारकी लहर उठाई जा रही है कि सतयुग आनेवाला है—कल्कि अवतार हो चुका। चार साल वाद अर्थात् सम्वत् २००० से रामयुग प्रारम्भ होगा। इसी प्रकारकी भावनायें यूरोपमें आजसे प्रायः सौ साल पहले उठ रही थीं। ठीक उसी समय एक गणितज्ञ तथा अर्थ शास्त्रवेत्ता—टी० आर० माल्थ्यूज़ने अपनी आवाज वुलन्द करते हुए कहा कि यदि उपर्युक्त दशा उपस्थित हो जायगी तो संसारकी आवादी अनापशनाप वढ़ जायगी, प्रत्येक व्यक्तिको भोजन भी न मिल सकेगा, पाप और अशान्तिको रोकनेके लिये आवादी पर प्रतिवन्ध लगाना अत्यावश्यक है। यह विचार Essay on Population 'जन संख्यापर निवन्ध" नामक ग्रन्थमें प्रकट किये गये थे। यह निवन्ध वर्षों पश्चात् दो भिन्न-भिन्न जन्तुशास्त्रवेत्ताओं द्वारा पढ़ा गया। यद्यपि वे निवास करते थे पृथक्-पृथक्, दूर दूर, किन्तु "जन संख्यापर निवन्ध" नामक ग्रन्थने दोनोंके मस्तिष्कमें एक सा ही, ठीक एक ही भांतिका उत्तर उत्पन्न कराया। दोनोंने ठीक एक ही उत्तर दिया कि 'हमें प्रतिवन्ध लगानेकी आवश्यकता नहीं, प्रकृति- में तो स्वयं प्रतिवन्ध विद्यमान है—यदि ऐसा न होता तो आजतक वृक्ष इतने हो गये हाते कि एक इञ्च स्थान भी न वचता। पशु पक्षी इतने हो गये होते कि वही-वही दिखलाई पड़ते आदि। इस प्राकृतिक प्रतिवन्धका उन दोनों विद्वानोंने नाम रखा Natural Selection प्राकृतिक चुनाव। यह घटना सन् १८५८ में, अर्थात् आजसे केवल वयासी वर्ष पहले हुई थी। आश्चर्य है कि केवल वयासी वर्षमें ही विकासवादका रुधिर समस्त धरातल-कोणोंमें प्रविष्ट कर गया। वे दो सज्जन जिनके मस्तिष्कमें एक साथ उत्तर उठा था—डार्विन और वैलेस थे। आगे चलकर इन दोनोंने मिलकर, युग परिवर्तनकारी विचार धाराओंका स्रोतमुख खोल दिया।

प्राकृतिक-चुनावमें केवल चार बातें हैं जो स्मरण रखने योग्य हैं। (१) सृष्टिके कोने कोनेमें—प्राणियोंमें व वनस्पतियोंमें अहर्निशि जीवन-सङ्घर्ष चल रहा है। (२) इस युद्धमें—इस कशमकशमें जो प्राणी शेष बच रहते हैं उनमें मरे हुओंकी अपेक्षा अधिक विशेषता होती है। (३) शेष बचनेवाले सदस्य जिन गुणोंके कारण शेष रहे हैं वे गुण थोड़े बहुत परिमाणमें उनकी भावी सन्ततियोंमें भी उतर आते हैं। (४) आनुवंशिकत्वकी प्रबलता से यद्यपि बालक अपने मां-बापके प्रतिरूप ही होते हैं फिर भी कई सूक्ष्म बातोंमें विभिन्नता होती है।

बस इन चार बातोंमें ही विकासवाद, डार्विनवाद, प्रकृतिवाद आदि कोई वाद कहें, सम्पूर्ण तर्क-वितर्क निहित है यदि इनको स्पष्ट व स्वतन्त्र विधि क्रमशः समझ लिया जाय तो मेरी समझमें अनुपयुक्त न होगा।

पहली बात जीवनके निमित्त सङ्घषवाली हैं। साधारण दृष्टिसे देखनेपर हमें सृष्टिमें चारों ओर शान्ति प्रतीत होती है—सरिताओंका कलकल नाद—विहंगवलियोंका मधुर सङ्गीत प्रातःकालीन वसन्त उषाकी लालिमा, उपवनोंमें हरिणशिशुओंका स्वच्छन्द विहरण देखकर हम भले ही अनुमान लगा लें कि चारों ओर शान्ति,सुख और सुन्दरताका बोलबाला है। परन्तु वास्तविक रहस्य इसके विपरीत है। प्रत्येक प्राणीको दो मोटे मोटे प्रश्नोंका प्रति क्षण सामना करना पड़ता है—भोजन और शत्रु। कोई भी जन्तु शत्रुहीन नहीं। गन्दगी जैसी साधारण वस्तुसे पेट भरनेवाले भुनगेको मेढ़कका डर है, मेढ़कको खा जानेके लिये सर्प मुंह खोले बैठा है, सर्पको जीवित निगल जानेके लिये गरुड़ या मयूर दबे पांव आगे बढ़ रहा है, मयूरपर सहसा उछलकर आ धमकनेके लिये खूंखार भेड़िया झाड़ीमें छिपा रक्त लोलुप जिह्वासे ओठ चाट रहा है आदि आदि अटूट शृङ्खला आगे बढ़ती ही रहती है।

यदि प्रकृतिमें शत्रु व्यवस्था न होती तो आज तक इतने प्राणी, इतने पेड़-पौधे हुए होते कि बेशुमार। छोटे छोटे तीन चार उदाहरण ही पर्याप्त होंगे। प्रोफेसर मैकब्राइड हमें बतलाते हैं कि साधारण घरेलू चिड़िया वर्ष भर की होते ही अण्डा देने वाली होती है। पूर्णायु औसतन् १० वर्ष है। प्रतिवर्ष इन चिड़ियोंका एक दम्पति लगभग चार बच्चे पालता है। एक जोड़े को लेकर देखें तो पता लगेगा कि यदि सब जीवित रहें व सन्तति उत्पन्न करते रहें तो दसवें वर्ष (प्रथम दम्पत्तिके जीवनान्त) तक उनकी संख्या १९५००,००० (एक करोड़ पचानवे लाख) हो जायगी। अगले दस वर्षों में प्रायः २००,०००,०००,०००,००० (बीस नील) और तीस वर्षके अन्त तक १,२००,०००,०००,०००,०००,०००,००० हो जायगी। यदि एक दूसरेसे सटकर खड़ी कर दी जांय तो समस्त धरातलमें उपर्युक्त सेनाकी एक सौ पचास हज़ारवीं सेनासे भी अधिकके लिये स्थान न मिलेगा। यह केवल तीस वर्षमें हुआ था, आज तक न जाने कै लाख वर्षोंसे इनकी सन्तति-वृद्धि होती चली आई है, पर कहीं भी उपर्युक्त सेना नहीं दीखती,कारण कि भोजन न मिलने, ऋतुकी तीव्रता, शीत-प्रकोप, हिमपात, भीषण ग्रीष्मकी प्रचण्ड लपटें, बाज़ इत्यादि शक्तिशाली शत्रु आदि २ न जाने कितनी प्राकृतिक चक्रियों के बीच से होकर निकलनेके कारण असंख्य सदस्य चल बसे। उन परिस्थितियोंका सामना करते करते कुछ ही शेष रह गये।

ऊपरके एक उदाहरण द्वाराही हमने विश्व व्याप्त नियमकी सत्यता प्रमाणित करनी चाही है। उदाहरण सहस्रों लिये जा सकते हैं, पर व्यर्थमें समय नष्ट करना होगा। उसी एक सत्यकी पुष्टिके लिये दो एक उदाहरण और देखकर हम आगे बढ़ेंगे। वंश-वृद्धि सबसे कम अगर किसीकी होती है तो हाथियों की। हथिनीकी सौ वर्षकी आयुमें केवल तीन सन्तानें उत्पन्न होती हैं।

ार इतनेसे ही गणना लगाकर देखा जा सकता है कि यदि परिस्थितियाँ विप-
ीत न हों तो एक जोड़ेसे केवल साढ़े सात सौ वर्षोंमें एक करोड़ नब्वे लाख
ाथी हो जांयगे। जब हाथीका यह हाल है तब कुत्ते सरीखे प्राणियोंका क्या
ाल होगा! उनसे तो सौ वर्षमें ही पृथ्वी भर जायगी किन्तु। आज हमें इतने
ाहीं दीखते अतः स्पष्ट है कि जितने उत्पन्न होते हैं, सबके सब अन्त तक
ीवित नहीं रहते। बहुतेरे बीचमें ही समाप्त हो जाते हैं। बच रहनेवालों
ां से सबके सन्तानोत्पत्ति नहीं होती।

यहां तक केवल पशु-पक्षियोंके उदाहरण ही लिये हैं, एक उदाहरण वन-
पति जगतसे ले लेना भी ठीक होगा। प्रोफेसर हक्सलेका कहना है कि एक
रख्तमें केवल पचास बीज होते माने और हर एकके लिये केवल एक वर्गफुट
गगह रखें तो केवल नौ ही वर्षोंमें इतने हो जायेंगे कि पृथ्वी पर यही यही
देखाई देंगे। एक इञ्च जगह भी शेष न बचेगी। इन उदाहरणोंसे पता लगता
ै कि जीवनके लिये युद्ध चल रहा है। इस युद्धमें शेष वही बचते हैं जो
अपने साथियोंसे कुछ अधिक विशेषता लिये हुए होते हैं।

यही विकासवादकी दूसरी सीढ़ी है।

इसमें आश्चर्यकी बात नहीं। इसे तो हम नित्यके जीवनमें देखा करते हैं।
जेनमें सामयिक परिस्थितिका सामना करनेकी शक्ति होती है वही बच रहते
ैं और उन्हींकी सन्तानें पैदा होती हैं। सुस्त प्राणी बाज़ी नहीं मार पाते।
ङ्गलैण्डमें पहले काले रंगके चूहे थे, किन्तु नार्वेसे श्वेत रंगके चूहे जहाज़मेंभर
र वहाँ पहुँचाये गये तो कुछ समय पश्चात् श्याम मूसक लुप्त होगये। रूसमें
ाहले झीगुरोंकी बड़ी संख्या थी पर एशियासे गये हुए बारीक झींगरोंने उनका
ाम शेष कर दिया। कारण यह था कि प्रवासी प्राणियोंको जलवायु परिवर्त्तन
अधिक श्रेयस्कर हुआ, प्राचीन निवासियोंका कम; अतः जब कभी उन देशोंमें

सहसा ऋतुपरिवर्तन उपस्थित हुआ, विदेशी चूहे और भींगुर तो सहन कर गये, किन्तु देशी चूहे और भींगुर न कर सकनेके कारण चल वसे। वनस्पति जगत्की ओर देखें तो खाद्य अन्नोंके साथ निरुपयोगी पौधे उग आते हैं। कृषकगण उन्हें समूल उखाड़ फेंकते हैं कारण कि इनके होते खाद्य अन्नोंका पर्याप्त भोजन पा जाना कष्टसाध्य है। तात्पर्य यह कि जो जो व्यक्ति अथवा वंश जीवित रहनेके अयोग्य होते हैं वे नष्ट हो जाते हैं और उनका स्थान योग्य व्यक्ति ले लेते हैं।

विकासवादकी तीसरी धारा है आनुवंशिकत्वकी। जिन विशेष गुणोंकी बदौलत कोई प्राणी या जाति जीवन-संघर्षमें जीवित बच रही है वे गुण कुछ न कुछ मात्रामें उनकी सन्तानोंमें भी पाये जाते हैं। यह तो स्पष्ट है और निर्विवाद भी कि चतुर मां-वापके लड़के चाहे कितने ही चतुर न हों, बुद्धू मां-वापके लड़कोंसे तो अधिक ही बुद्धिमान होंगे। स्वाभिमानी आत्मगौरवी मां-वापके पुत्रोंके रक्तमें भी स्वाभिमानकी धारा प्रवाहित रहती है जब कि कायरका पुत्र जीते हुए भी आत्महीन सा रहता है।

किन्तु स्मरण रखना चाहिये कि पिता-माताके सम्पूर्ण गुण व विशेषताएँ पुत्रोंमें उतर आती हैं सो वात नहीं। यदि ऐसा होता तो एक माँ-वापसेजितने पुत्र होते वे सव एक ही प्रवृत्ति, स्वभाव, आकृति वाले होते। पूर्ण सादृश्य कभी नहीं होता। व्यक्तिगत अन्तर होता ही है। यही विकासवादकी चौथी सीढ़ी है। नित्य सहस्रों व्यक्ति देखा करते हैं किन्तु सवकी आकृतियां भिन्न होती हैं—युग्म भ्राताओं तकमें भिन्नता मिलती है—झुण्डकी भेड़ें हमें भले ही एक सी आकृति वाली दीखें, किन्तु भेड़पालको पहचान लेनेके लिये अन्तर होता ही है, और तो और दो पत्तियां एकसी न मिलेंगी। एक स्थान, एक जलवायुमें पनपने वाले किन्हीं दो फलोंका स्वाद, रूप, रंग, गंध एक सा न मिलेगा।

इन चारों धाराओं युक्त विकास-प्रणालीको एक साथ लेकर विचार करें तो पता चले कि वर्त्तमान सृष्टि सम्बन्धी सम्पूर्ण शंकाओंका उत्तर मिल जायगा। पशु और वृक्षोंकी संख्या असीमित क्यों नहीं है? कारण यह कि प्रति क्षण जीवन-संघर्षकी चक्की चल रही है। इस चक्कीमें अंधे, विचारहीन, शक्ति-हीन तो पिस जाते हैं, परन्तु चालाक, चतुर, समयानुसार वर्तनेवाले भाग बचते हैं। दूसरी शंका उठती है, "प्रकृतिमें इतनी भिन्नता क्यों है?" इसका उत्तर देनेके लिये तीसरी व चौथी धाराको मिलाकर कहना होगा। दीख पड़नेवाले प्राणियों व पशुओंने बहुतेरे गुण तो मां-बापसे पाये हैं और बहुतेरे अपने ही जीवनकालमें पा लिये हैं।

अब केवल एक प्रश्न शेष रह जाता है कि व्यक्तिगत भिन्नतायें जो मां-बापसे उधार नहीं ली गयीं, किन कारणों पर अवलम्बित हैं।

यहां जब नैसर्गिक चुनावकी चर्चा की जा रही है कृत्रिम चुनावकी चर्चा कर देना बुरा न होगा बल्कि उपर्युक्त प्रश्नके उत्तर पानेमें सहायता ही मिलेगी। विशेषज्ञोंने भिन्न भिन्न प्रकारके कबूतरोंकी जांच की है। किन्हींकी चोंच लम्बी है तो किन्हींकी छोटी, किन्हींकी पूँछ लम्बी है, किन्हीं की ठिगनी आदि। यह सब कबूतर मनुष्यने अपने बुद्धि-कौशलसे उत्पन्न किये हैं। किस प्रकार? सौ दो सौ जंगली कबूतरोंको पकड़ लिया, यदि लम्बी चोंच वाले कबूतर उत्पन्न करना है तो उनमेंसे वे कबूतर छांट लिये जो सबसे अधिक लम्बी चोंच वाले हैं—उनके जो बच्चे हुए उनमेंसे फिर लम्बी लम्बी चोंच वाले छांट लिये। इसी प्रकार पन्द्रह बीस पीढ़ी तक करते जानेके पश्चात् वाञ्छित कबूतर मिल गये। रंग-बिरंगे कबूतर पाने हुए तो श्वेत और श्याम नर-मादाका साथ कराया। उनसे जो उत्पन्न हुए, कुछ का श्वेतसे कुछ का श्यामसे; इसी प्रकार बढ़ते गये। कुत्तेकी विभिन्न जातियां जैसे बुल-

डाग, ग्रेहाउण्ड, टेरियर, स्पेनियल उत्पन्न करानेके लिये भी मनुष्य वही विधि काममें लाता है। घुड़दौड़के चपल तेज़ घोड़े छांटनेके लिये भी उपर्युक्त कृत्रिम चुनाव प्रयुक्त करता है। अच्छी खेती पैदा करनेके लिये किसान रोग-रहित बड़ा दाना छांट रखता है। जो भी फल हमें आज इतने स्वादिष्ट प्रतीत होते हैं वे आदिकालमें जब जंगली दशामें थे तब स्वादिष्ट न थे; किन्तु मनुष्यके कृत्रिम चुनावने वर्तमान स्वाद दिला दिया। दक्ष माली अपनी वाटिका में पुष्प-वृक्षोंमें क़लम लगाकर भांति-भांतिके फूल उत्पन्न करता है।

जब मनुष्य अपनी जीवनीमें ही एक दूसरेसे भिन्न दीखनेवाले प्राणी पैदा कर सकता है, तब यही बात लाखों वर्षोंके अर्सेमें क्या प्राकृतिक चुनाव द्वारा सम्भव नहीं है!

प्राकृतिक शोधके द्वारा एक ही जातिके प्राणियोंसे बहुत समय पश्चात् भिन्न भिन्न जातियां बन जाती हैं।

यह हुआ जाति सम्बन्धी अन्तरका संक्षिप्त विवेचन, अब शारीरिक वर्ण, आकृति सम्बन्धी अन्तरकी मीमांसा की जाय।

शारीरिक वर्ण और आकृति पर भौगोलिक परिस्थितियोंका प्रभाव अधिक पड़ता है। अत्यन्त उष्ण कटिबन्धमें रहनेवाले मनुष्य बहुधा श्याम वर्णके तथा शीत कटिबन्धमें रहनेवाले गौर वर्णके होते हैं।

जिन प्राणियोंको रात्रिमें चलना, फिरना या भोजन पाना पड़ता है, उनका रंग प्रायः काला होता है, भड़कीला नहीं। इस प्रकारके प्राणी चूहे, उल्लू, चिमगादड़ हैं। इसी भांति जिन प्राणियों, पतिंगों आदिको हरे और शीतल झुरमुटमें रहना पड़ता है, वे प्रायः हरे होते हैं और जिन्हें सूखी घास अथवा सूखे वृक्षकी पत्तियोंमें रहना पड़ता है उनका वर्ण भी आसपासके रंगके समान होता है। यहां तक देखा गया है कि अर्क मदारके पत्तों पर जीवित रहने

वाला कीड़ा उसी गंध का होता है। जीवके रुधिर, रंग, गंध पर उसके जन्म-स्थानका गहरा प्रभाव पड़ता है, दोनोंको विलग नहीं किया जा सकता। प्रायः हरे कीड़ोंको देखकर लोग कहने लगते हैं कि भगवान्ने क्या ही सुन्दर कीड़ा बनाया है। उनका ध्यान कीड़ा व उसके जन्मस्थानके अटूट सम्बन्धकी ओर नहीं जाता। उन्हें कार्य व कारणका रिश्ता मिलाना नहीं आता। सीधी सी बात आती है। जो कुछ होरहा है सहसा अकस्मात् होरहा है, ईश्वरकी आज्ञासे हो रहा है। रोगोंके सम्बन्धमें भी आदिम व्यक्तियोंकी यह धारणा थी और आज भी धरातलकी आधीसे अधिक अशिक्षित जनता समझती है कि रोग दैवी शक्तियों द्वारा प्रेरित होते हैं—उन्हें तंत्र, मंत्र, जादू, टोना, झारने, फूंकने, बलि इत्यादि द्वारा ठीक करनेका व्यर्थ प्रयास करता था। किन्तु जब जान गया कि रोगके कारण कुछ और ही हैं—भोजन व जलवायुकी अव्यवस्थायें हैं, तब उन मूर्खताओंसे पीछा छुड़ाकर प्रकृतिकी शरण आ गया। इसी प्रकार फलकी मिठास, पुष्पका सौंदर्य, उपवनकी शोभा, पक्षियोंकी विभिन्नता देखकर सीधा-सादा मानव समीपवर्ती परिस्थितियों पर दृष्टिपात न करके एक तीसरी सत्ताकी ओर संकेत करने लगता है। हमारा, पशुओंका, पक्षियोंका, वृक्षोंका जीवन निर्भर है वायु, सूर्यरश्मि, जल व खाद्य पदार्थों पर। उपर्युक्त वस्तुयें जिस जातिकी मिलेंगी, हमारा शरीर-निर्माण भी तदनुसार ही होगा। समस्त भूमण्डल पर पाई जाने वाली उपर्युक्त वस्तुयें एक ही प्रकृतिकी नहीं है, अतः उनसे निर्मित शरीर भी एक भाँतिके नहीं। जीवनका सीधा सम्बन्ध प्राकृतिक परिस्थितियोंसे है। इसका पूर्ण विवरण पिछले अध्यायमें दिया जा चुका है।

आंख घुमाकर देखें तो चारों ओर असंख्य कीट, पतङ्ग, चतुष्पद, द्विपद, जलचर, वृक्ष, लता, तृणादि दीख पड़ते हैं। इन सबको मोटी-मोटी दो शाखाओं में विभक्तकर सकते हैं—वनस्पति और पशु। दोनों परस्पर एक दूसरेसे विधे

हुए हैं। वल्कि यह कहना ठीक नहीं—ठीक यह है कि दूसरी शाखा (पशु) पहलीपर अवलम्बित है। धरा-पृष्टपर-प्रथम वनस्पतिका प्रादुर्भाव हुआ। कई वर्षोंतक वायुमण्डलकी अशुद्धता मिटाते-मिटाते उसे जब श्वास ले सकने योग्य कर दिया। तव पशुओं (जलचरों) ने समुद्रसे निकलकर धराकी ओर रेंगना प्रारम्भ किया। रेतीले समुद्रतटपर लहरानेवाली हरी मरीचिका ही तो समुद्र-जन्तुओंको वाहर निकल आनेके लिये निमन्त्रित कर रही थी। वनस्पति पहलेसे उपस्थित न होती तो जलजन्तु क्या खाकर रहते? अतः वनस्पति प्रत्येक दशामें पशुसे प्रधान और आगे है। वनस्पतिका अटूट सम्वन्ध यदि किसीसे है तो भूमि और जलवायु है। प्रारम्भमें जब कड़ी चट्टानी भूमि थी—ऊंचे-ऊंचे ताड़ सदृश शाखा-पत्रहीन वृक्ष थे जैसे-जैसे चिकनी मिट्टी व धूल वढ़ती गई, वृक्ष छोटे सघन शाखा पल्लववाले होते गये—एक समय आया जव कि चिकनी मिट्टीमें दूर्वादल, तृण, जड़ी, वूटी, पुष्प, वृक्ष, आदि उगने लगे।

जिस समय वनस्पति-शाखा वढ़ रही थी, ठीक उसीके साथ साथ समानान्तर रूपमें तदाश्रित पशुशाखा वढ़ रही थी। सव काम साथ साथ हो रहे थे। यह किस क्रमसे हुए, इसे विस्तार पूर्वक समझना आवश्यक है क्योंकि यह विकास-यात्रा ही मुख्य वस्तु है।

प्रकृतिवादियोंका अध्ययन वतलाता है कि वनस्पति और पशुसृष्टिके पूर्व कई हज़ार वर्षोंतक इस प्रकारकी सृष्टि थी कि न तो वनस्पति ही कहा जा सकता था और न पशु ही। उसमें दोनोंके गुण विद्यमान थे। उभयपदी मिश्रित सृष्टिसे ही वनस्पति व पशु-लक्षणवाली दो शाखायें फूटीं।

८

जीव-रचनाका प्रारम्भ

यहां उस वाद-प्रतिवादको लिखनेकी आवश्यकता नहीं जो अभी तक वैज्ञानिकोंमें चलता आ रहा था। वादका विषय था जीवन प्रारम्भ सर्वप्रथम कहां हुआ ? वायु में, जल में या पृथ्वी में ? यहां इतना कह देना पर्याप्त होगा कि वहुमत जल (समुद्र) के पक्षमें रहा।

एक प्रश्न ऐसा था जिसपर समस्त वैज्ञानिक सहमत हैं। वह यह कि "जीवका प्रादुर्भाव निर्जीव अर्थात् जड़ पदार्थोंसे हुआ"। हम देख चुके हैं कि जीवन प्रोटोप्लाज्म नामक जीवित द्रवपर निर्भर है जिसकी उत्पत्ति चार मुख्य पदार्थोंपर निर्भर है।

जव ही चार पदार्थ उचित मात्रामें मिल जायंगे जीव उत्पन्न हो जायगा। निर्जीव पदार्थों द्वारा जीवका विकास होना देखनेमें असम्भव मालूम पड़ता है पर कुछ वैज्ञानिक जोर देकर कहते हैं कि हम नित्य ही निर्जीव पदार्थोंके मिश्रणसे जीवोंका उदय देखा करते हैं किन्तु उनपर ध्यान नहीं देते

अतः असम्भव प्रतीत होती है। एक दिन मैं प्रातःकाल भ्रमणके लिये गया तो अरहरके खेतमें पत्तियोंपर काले-काले भुनगे चिपके पाये। एक दो पेड़में नहीं सम्पूर्ण खेतमें मिले। चार दिन पूर्व इनका कोई अस्तित्व न था किन्तु आज दो दिनके कठिन शीतने अरहरकी हरी आर्द्रतासे मिलकर इन कीट समुदायोंको उत्पन्न कर दिया। वैज्ञानिक पण्डितोंमेंसे कुछका कहना है कि ये जीव वायु-मण्डलमें फैले हुए जीवाणुओंसे ही बने हैं, पर कुछ कहते हैं कि 'इनके कोई पूर्वज नहीं और न सम्भवतः अनुवंशज ही होंगे। इनका निजी जीवन भर है। यह जन्तु किसीके गर्भसे पैदा नहीं हुए—शीत, नमी, ताप और गैसोंके योगसे निर्मित हुये हैं, छोटे जीवित कणसे वढ़े हैं जब तक जियेंगे तबतक पौधेके तनेमें चिमटे-चिमटे हरियाली चुगते रहेंगे और तीव्र धूपके दिन आते ही, या पेड़ सूख जानेपर सब एक साथ समाप्त हो जायँगे; मैथुन और सन्तानोत्पत्तिकी आवश्यकता ही नहीं; ऋतुने इन्हें उत्पन्न किया, ऋतुने समाप्त। मुझे यह मत पसन्द है।

कई जड़ पदार्थोंके सम्मिश्रणसे जीवन विकसित हो जाता है। ग्राम-वासियोंके सरमें जब अधिक मैल जम जाता है तो जूं उत्पन्न हो जाते हैं। एक दो माह पूर्व जब सर घुटाया था तब एक भी जूं न था जो इतने जूंको जन्म देता फिर कहांसे आ गये! मैल, पसीना, सूर्य रश्मि ताप आदिके मेलसे। वर्षा ऋतुमें किसी गाय बैल भैंस आदिके चोट लग जाय और कहीं दुर्भाग्य-वश उस घावपर मक्खी बैठकर विष्ठा कर दे तो निश्चय ही कीड़े पड़ जाय। जिन घरोंकी नालियां महीनों साफ नहीं की जातीं अन्न धुलता रहता है वहां कीड़े उत्पन्न हो जाते हैं। आदि सहस्रों उदाहरण दिये जा सकते हैं और प्रमाणित किया जा सकता है कि जड़से अथवा निर्जीवसे जीवका उत्पन्न होना सम्भव है।

उपर्युक्त गिनाये गये जीव निर्जीव वस्तुओंके योगसे अवश्य उत्पन्न होते हैं किन्तु उनसे विकास वादमें सहायता नहीं मिलती क्योंकि जब ये स्वयं किसी मां के गर्भसे उत्पन्न नहीं होते तो वंशज भी नहीं छोड़ जाते। क्षणिक होते हैं। इनकी आगे शाखायें नहीं चल सकतीं। इस सृष्टिको जिसका ऊपर वर्णन किया जा चुका है अमैथुनिक (जो मैथुनसे उत्पन्न न हो, स्वतः हो) कहते हैं। मैथुनिक सृष्टि बहुत आगे चलकर हुई। प्रारम्भमें तो अमैथुनिक सृष्टि ही थी।

जीवन समुद्रसे प्रारम्भ हुआ कहा ही जा चुका है। सामुद्रिक क्षार, जलमें घुसनेवाली सूर्य किरण, तथा कई प्रकारकी मट्टियोंके योगने समुद्रमें अमैथुनिक सृष्टि उत्पन्न कर दी। सबसे प्रथम उल्लेखनीय प्राणी **अमीबा** माना जाता है। यह महत्त्वपूर्ण जीव है। क्योंकि हम सब प्राणियोंका आरम्भ इसीसे हुआ है। ऊपर ऊपरसे इसके हाथ, पैर, मुह, आंख, कान, नाक, आदि कुछ दृष्टिगोचर नहीं होते। इसका शरीर केवल एक और वह भी अत्यन्त सूक्ष्म, कोशका बना होता है। सूक्ष्म दर्शक यन्त्रकी सहायताके विना इसका अध्ययन नहीं किया जा सकता। सूक्ष्म दर्शक यन्त्र लगाकर थोड़ी देर तक देखनेसे पता चल जाता है कि अन्य प्राणी जिस प्रकार खाते-पीते सन्तानोत्पत्ति करते हैं, उसी प्रकार यह भी सब व्यवहार करता है। इसके शरीरके चारों ओर जटायें सी फैली हैं वही इसके पैर हैं—इन्हें चाहे हाथ कह लें तो भी अन्तर न होगा। यह हाथ (अथवा पैर) सदैव हिलते रहते हैं, गति पूर्ण रहते हैं। फैलते व सिमटते रहते हैं। जैसे ही खाने योग्य जीवका स्पर्श हुआ कि उसे आलिङ्गनकर बाहु पाशमें जकड़ लिया, हड़प लिया। जीवोंको खा चुकनेके पश्चात फिर उनको विष्टाके रूपमें निकालनेका नाम नहीं जानता। एक तो इसके मल द्वार होता ही नहीं और दूसरे इसकी भोज्य

सामग्री रस युक्त होती है जिसके निस्सार पदार्थ होता ही नहीं। जैसे-जैसे भोजन करता जाता है आकार बढ़ता जाता है। जब बहुत बड़ा हो जाता है तब सन्तानोत्पत्ति करता है।

इसके जैसी सन्तानोत्पत्ति सृष्टिमें कदाचित ही किसीकी होती होगी। नर मादामें भेद नहीं फिर भी सन्तानोत्पत्ति। वह कैसे? वह इस प्रकार कि इसके शरीरको जैसे-जैसे पोषण मिलता जाता है वैसे ही वैसे इसका शरीर स्थूल होता जाता है। चित्रमें जहां काले बिन्दुसे केन्द्र बनाया गया है, आगे चलकर वहांसे शरीर लम्बा होने लगता है और दो पृथक् भागोंमें बट जाता है भिन्न-भिन्न दो स्वतन्त्र **अमीबा** बन जाते हैं। अब उस प्रारम्भिक **अमीबा** का अस्त्वि न रहा उसके स्थानपर दो हो गये। दोमेंसे प्रत्येकके फिर दो दो भाग हुये। अब चार हो गये। इसी प्रकार दूने होते गये इस प्रणालीको सन्तानोत्पत्ति न कहकर आत्म-विभाजन कहा जाय तो अधिक ठीक होगा।

आगे चलकर घोंघेदार जीवोंकी सृष्टि आई। इन घोंघोंमें विशेषता यह होती है कि बिना व्यक्तिगत अस्तित्व नष्ट किये ही एक दूसरेसे जुड़ सकते हैं। इस जुड़े हुये झुण्डमें कई जातिवाले घोंघे सम्मिलित रहते हैं। यह घोंघे सदैव सटे ही नहीं रहा करते। अलग-अलग हो जाते और फिर मिल जाया करते हैं इनका अलग होना व मिलना, घड़ीके पेंडुलमकी भांति, तालल्यसे होता है। जब एक साथ चिपक जाते हैं तो संतरणशील उपनिवेश बन जाते हैं।

सम्भवतः उच्चवर्गीय वृक्ष इन्हीं औपनिवेशिक शृङ्खलाओंसे प्रादुर्भूत हुए। समुद्र जलकी सतहपर काई, सेवार आदि पहलेसे तैरा करती थी। इन उपनिवेशों पर लिपटकर स्थायी विश्राम घर व पर्याप्त भोजन सामग्री पा ली। घोंघे भी

इस काई, झावर, सेवार आदिसे इस प्रकार चिपक जाते हैं कि द्वैतकी आशंका तक नहीं हो पाती। इन्हींके सम्पर्कसे प्राणि-वृक्ष विकसित हुए जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है।

प्रारम्भिक जल वनस्पतिने शीघ्र ही अपने शरीरके अंगोंमें श्रम विभाग प्रारम्भ कर दिया। प्रारम्भमें सामुद्रिक घासके तीन भाग हुए। एक पानीके भीतर रहनेवाला, दूसरा सबसे ऊपरी भाग जो खुले वायुमण्डलमें रहता और तीसरा भाग दोनोंके बीचवाला। पहले भागका काम था कि जलमग्न चट्टानसे लिपटा रहे ताकि पौधेको गिरनेसे बचावे। अभी इस भागका काम, मूलका काम करना (भोजन चूसना) न था अपितु लंगर डाले रहनेमें सहायता करना ही था। दूसरे भागका काम था वायुमण्डलसे नाइट्रोजन, कारबोनिक एसिड गैसादि, सूर्यताप, ईथर लहर ग्रहण करना व भोजन तयार करना। तीसरे भाग—मध्य भागका काम था प्रथम व द्वितीय भागमें सम्बन्ध स्थापित रखना अथवा ऊपर द्वारा तैयार किया भोजन नीचे तक पहुंच जाने देना और पोली नलीका काम करना। पौधेके सम्पूर्ण अंग भोजन सामग्रीके निर्माणार्थ जुट जाते हैं। यातायातके साधन विकसित हो चलते हैं।

अभी, छाल, तना, लकड़ी, वल्कल, वास्तविक जड़ विकसित नहीं हो पाई, बीज, पत्ती, फूल, पराग फल तो बहुत दूरकी वस्तुएं हैं। स्मरण रहे कि वनस्पति जगत्‌में का यह प्रारम्भ बीजसे नहीं हुआ। बीज था ही नहीं बीजसे पेड़ कैसे उगते। सबसे प्रथम विकसित होनेवाला पौधा **प्रोटोकोकस** माना जाता है।

इधर प्राणियोंमें घोंघेसे कई जातियां विकसित हुईं जिनमें दो ही आगे बढ़नेमें सफल हो सकीं। स्पंज और पोलिप्स (बहु-चरण)। इन दोनोंकी दौड़में स्पंज कम सफल रहा क्योंकि वह सदा समुद्र तहमें ही कूप-मण्डक बना

पड़ा रहा तथा कभी धमनी या नसके कामसे लाभान्वित न हो सका। सच पूछा जाय तो इसका कारण यह था कि स्पंज एक मुख वाला, जन्तु न था, अगणित मुखवाला सहस्त्रछिद्री था।

पोलिप (बहुपाद) अधिक उन्नतिशील थे। इनके अगणित मुख न होकर एक मुख था जो कि पाचनकेन्द्र-नलीसे सम्बन्धित था। मुंहका सम्बन्ध नली द्वारा भोजन पाचनालयसे था। इनके शरीरमें सरल धमनी जाल व नसों का प्रादुर्भाव भी हो चला था क्योंकि आमाशय था। नसें शरीरमें टेलीग्राफिक तारका काम देती हैं। इनके प्रादुर्भावका अर्थ होता है शरीरके एक अंगका दूसरे अंगसे सम्बन्धित हो जाना, अंगोंका पारस्परिक सहयोग बढ़ना। जब यह अंतः सहयोग बढ़ा तो मुखके पड़ोसका भाग स्थूल हो चला। इसकी सारी चेतना शिकार पकड़नेकी चिन्तामें व्यतीत होती थी। जिस अंगमें यह क्रियायें होती थीं वह मुखके समीप था। यह मस्तिष्ककी सूचना देने वाला अंग था। ध्यानकी एकाग्रता बढ़ते बढ़ते धमनी जालका केन्द्रीकरण बढ़ता गया, अंगस्थूल होता गया। कई पीढ़ियों तक यही क्रिया होती रही। कपाल तथा उसके भीतर मस्तिष्क बढ़ता गया।

देखनेमें सब पोलिप कपालहीन, सिरहीन होते हैं, पर सिर होता अवश्य है। यदि वे चाहें तो थोड़ा रेंग सकते हैं,अपने संकरे स्थानसे थोड़ा सरक सकते हैं किन्तु वे स्वयं शिकार नहीं पकड़ सकते—आकाशी वृत्ति पर निर्भर रहते हैं। इनके भोजन पानेकी विधि यह है कि वे हाथों व पैरोंका जाल खोल देते हैं फिर उसे सिकोड़ लेते हैं, जो कुछ कभी अनायास इस पकड़में फंस जाता है वही भोजनका काम देता है।

आगे चलकर इनकी संतानोंमें दो परिवर्तन हुए। पहले परिवर्तनने इन सुस्त, गतिहीन, मन्दप्रिय जन्तुओंको समुद्रकी पेंदीसे उठाकर समुद्रमें दूरतक

तैरनेकी प्रवृत्ति प्रदानकी। उनकी मन्दप्रियता दूर करके स्फूर्तिका संचार किया। दूसरे परिवर्तनने शरीरको संतुलनशील बना दिया ताकि वह पानीमें विना लुढ़के ठहर सके। अभी तक शरीर गोलाकार, नलीवत् था जो कि लहरोंके साथ ऊपर नीचे चक्कर लगाता रहता था पर अव शरीर गोलाकार वेलनसा न रहकर चार सतहवाला चपटा होगया—पीठ, पेट, दक्षिण व वामपार्श्व। अव शरीरका वैलेन्स पानी पर होने लगा।

यह जन्तु शरीरके एक भागसे रेंगते थे। उस भागका सिरा सदैव सामने रहता और दूसरा सिरा पूंछ वनकर पीछे। धीरे-धीरे इसी प्रकार सर और पूंछकी भांति अन्य अवयव भी स्पष्ट होने लगे। सवसे प्रथम सरका विकास हुआ। शनैः शनैः इसी सरमें विन्दुवत् नेत्रद्वय विकसित होने लगे।

नव विकसित सरवाले सव चपटे कीड़े nervous system या धमनी-प्रणालीसे युक्त हो चले थे। किन्तु रुधिर प्रणालीसे शून्य थे। इनके शरीर-व्यापी रसका रुधिर वनना प्रारम्भ न हुआ था। चपटे होनेका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि उनके अन्तः शरीरका कोई भाग जल-व्याप्त जीवन-दायिनी आक्सीजनकी पहुंचसे दूर न था। रुधिरका काम चपटे होनेसे चल जाता था।

इसी चपटे होनेने रुधिरको निमंत्रित किया। पूरे अंतरंगमें आक्सीजन पहुंचती ही थी धमनियोंमें प्रवाहित होनेवाला श्वेत रस लोहित वर्ण हो चला। रुधिरके साथ ही साथ रुधिर वाहक नालियाँ पुष्ट, प्रौढ़ हो चलीं। इसके फल-स्वरूप जन्तुका शरीर स्थूल व मोटा हो चला। यही कारण था कि यह जन्तु अपने पूर्वजोंसे अधिक स्थूल हुए। आक्सीजनने रुधिरको उत्पन्न किया था अव रुधिर आक्सीजनको और भी कोने कोने की नसमें पहुंचाने लगा। प्रत्येक धमनी मोटी हुई, शरीरका आकार लम्बे, गोल, मोटे, वेलनका सा हो चला।

लम्बे, गोल, मोटे कीड़ोंमें एक और विचित्रता हुई, जो कि अभीतकके किसी कीड़ेमें न थी। अभी तकके कीड़ोंके शरीरमें मलद्वार न था, सारहीन भोजन (विष्टा) उसी द्वारसे निकालते थे, जिससे भोजन ग्रहण करते थे। इनकी पाचन क्रियावाली नलीमें केवल एक ही सिरे पर द्वार होता था, दूसरा सिरा द्वारहीन होता था—इनकी अंतड़ियां अव्यक्त थीं। किन्तु जैसे ही रुधिर प्रणाली प्रारम्भ हुई पाचन क्रिया व्यवस्थित हो चली। साधारण आंतों द्वारा भोजनका सारहीन भाग, मलद्वार खुलवानेके लिये धक्के मारने लगा। कई पीढ़ियोंके बाद वह समय आया कि मलद्वारके कपाट खुल गये। सारहीन पदार्थ विष्टा बनकर निकल जाता, सारयुक्त भाग रस बनकर शरीर पुष्टिमें लग जाता।

यह मलद्वार एक ही पीढ़ीमें नहीं खुल गया। इसके लिये न जाने कितने वंश तक प्रकृतिसे सत्याग्रह करना पड़ा होगा। यह मलद्वार प्रारम्भमें मुखद्वारके समीप ही था। शनैः शनैः जैसे जैसे पाचन क्रियाकी नलीकी लम्बाई बढ़ी मुखद्वार और मलद्वारका अन्तर बढ़ता गया। रुधिरवृद्धि व व्यायामके कारण शरीर अधिक पुष्ट व मांसल होता गया। ढांचा बढ़ता गया और मलद्वारके पास पूंछकी लम्बाई और बढ़ चली। इसने तैरनेकी गतिवृद्धिमें योग दिया। पूंछ हिलाकर तैरनेकी शक्ति बढ़ती गई। रुधिरके कारण मज्जा, अस्थि, पंसुली बन चली। इनके पश्चात् रीढ़का उदय हुआ। अबसे रीढ़दार जन्तुओं-का प्रादुर्भाव हो चला। हम लोग भी रीढ़दार जीव हैं। हमारा अस्थि पंजर इस युगके पशुओंकी ठठरीके समान ही है। यह रीढ़दार जन्तु तत्कालीन पशु जगतके शासक थे। अच्छे मस्तिष्क और ज्ञानेन्द्रियोंके विकास आदिने उन्हें बड़ा विशालकाय शरीर प्राप्त करनेमें सहायता दी। कई प्रकारकी मछलियां हो चली थीं जरूर पर रीढ़दार जन्तुओंका आकार उन सबसे बड़ा था।

सम्भवतः प्रारम्भिक रीढ़दार जन्तु स्वच्छ जलमें विहार किया करते थे। प्राणियोंके विकासमें पूंछका विशेष महत्त्व है। चाहे हमें अब पूंछका होना बुरा लगता हो और अब चाहे हम यह माननेको भी प्रस्तुत न हों कि कभी मनुष्य के पूंछ थी पर यह भुलाया नहीं जा सकता कि पूंछकी ही बदौलत हम वर्तमान रूपमें आ सके हैं।

ब्रह्माण्डके इस विपुलायतन देशमें इस धरतीकी उत्पत्ति हमने देख ली। इस जड़-चेतन गुण-दोषमय धरतीके चराचरके सम्बन्धमें भी हमने संक्षेपमें आलोचना कर ली, अब इसके बाद जीव सृष्टिका नया अध्याय शुरू होता है। अब तक हमें बहुत कुछ अनुमान प्रमाणका ही सहारा लेना पड़ा है किन्तु इसके बादकी घटनाओंको प्रत्यक्षका बहुत अधिक सहारा मिला है। वह पृथ्वी-प्राचीन शिला राशियोंके रहस्यमय पृष्ठोंको पढ़कर लिखा गया है। इसका अध्ययन हम दूसरी पुस्तक "चैतन्यके विकास" में करेंगे।